महामानव



[जन जागरण की महागाथा]

ठाकुरप्रसाद सिंह
अग्रदूत

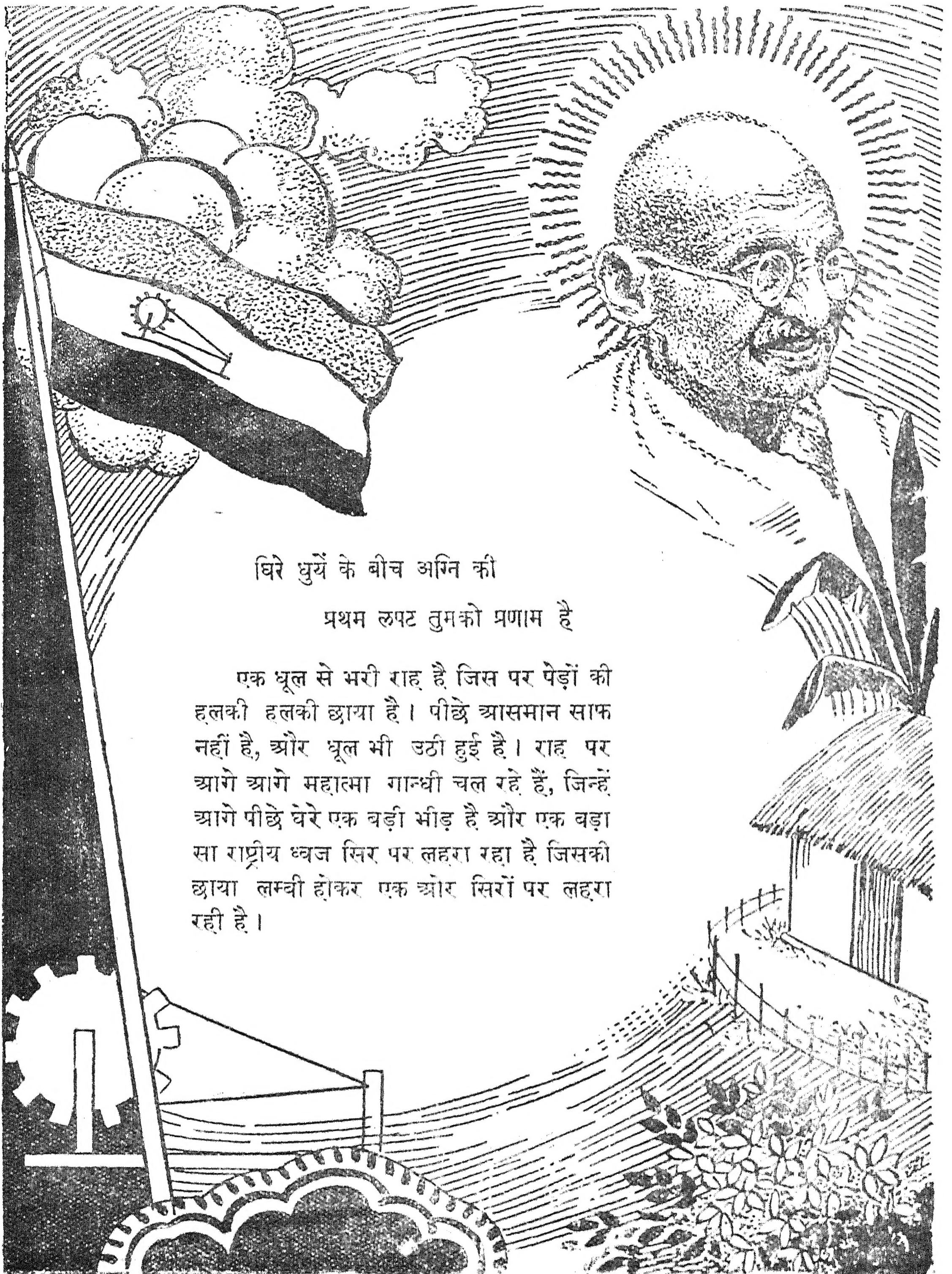
प्रकाश मन्दिर : काशी

चित्रकार--कांजीलाल।

चार रुपये आठ आने

प्रकाशक—
प्रकाश मन्दिर, काशी आर. एस. (बनारस)

मुद्रक—
पी० घोष--सरला प्रेस, काशी



घिरे धुयें के बीच अग्नि की
प्रथम लपट तुमको प्रणाम है

एक धूल से भरी राह है जिस पर पेड़ों की हलकी हलकी छाया है। पीछे आसमान साफ नहीं है, और धूल भी उठी हुई है। राह पर आगे आगे महात्मा गान्धी चल रहे हैं, जिन्हें आगे पीछे घेरे एक बड़ी भीड़ है और एक बड़ा सा राष्ट्रीय ध्वज सिर पर लहरा रहा है जिसकी छाया लम्बी होकर एक ओर सिरों पर लहरा रही है।

गान्धी जी स्थिर दृष्टि से राह की धूल में देखते चल रहे हैं, चेहरे पर भीतर की सम्पूर्ण उच्छ्वास आकर मूर्त्त हो जा रही है। जैसे समुद्र के कुछ कीड़े अपनी आग से रक्तवर्ण मूगों को स्वरूप देते हैं वैसे ही भीतर की भावनायें चेहरे पर ललाई के प्रवाल बिखरा बना रही हैं। वे आगे बढ़ने की मुद्रा में प्रलम्ब बाहु पूरी तरह पीछे फेंके हुए हैं और उसी अनुपात में बाँया पैर आगे की राह पर उठाये हैं जैसे अब गिरा कि गिरा।

यह गान्धी की दाण्डी यात्रा है।

मेरे घर की एक कच्ची दीवार पर बहुत पुरानी यही तस्वीर चिपकी हुई है। चारों ओर लिपते पुतते अब वह दीवार से इतनी एकाकार हो गयी है कि उसे वहाँ से एकाएक अलग नहीं किया जा सकता लेकिन अनसधे हाथों से बचा कर लिपने पुतने पर भी साल साल उसके चारों ओर मिट्टी का घेरा छोटा होता जा रहा है, जैसे स्मृति में सालों पहले के जड़े हुए चित्र को धीरे धीरे विस्मृति घेरती चली जाय।

यह बड़ा ही आश्चर्य है कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले एक अखबार से फाड़ कर चिपकाया हुआ चित्र एक कच्चे घर की दीवार पर अब तक क्यों टिका रह गया ! मध्य युग के वातावरण में घर की दुनिया डूबी है, और स्वयं नयी कोशिशें कर के भी मैं कहीं से भी उसे दूर नहीं कर पाया हूँ इसलिए बराबर मेरी हताश निगाह उस चित्र पर अटकती रही है। जब उसे देखा है एक ही भावना से अभिभूत हो गया हूँ। ठीक उसी के बगल में एक और चित्र है मेरा लगाया हुआ। कल्याण के किसी विशेषाङ्क से फाड़ कर सात आठ साल पहले मैंने उसे लगा दिया था। चित्र में भगवान वाराह रूप में समुद्र से बाहर निकल रहे हैं और उनके दाँतों पर पृथ्वी टिकी हुई है। एक दिन बैठे ही बैठे मैं गौर से देख रहा था। मुझे लगा कि वाराह की आँखों में वैसी ही व्यस्तता है, जैसी गान्धी की आँखों में।

इस आकस्मिक एकता ने मुझे आगे सोचने की नयी राह दे दी। पन्द्रह और आठ वर्षों से ये चार आँखें निर्विकार सी ताक रही थीं पर अब हमारे उनके बीच एक नया सम्बन्ध स्थापित हो गया।

घर में चित्रों की संख्या बढ़ गयी है। सब का वर्णन न करके केवल एक का ही चित्र मैं उपस्थित करूँगा। १९०८ की रूसी क्रान्ति की एक घटना है—भीड़ सम्भवतः महल के आगे प्रदर्शन कर रही है और सड़क के उस पार कजाकों की पंक्तियाँ बन्दूकों पर झुकी हुई हैं। भीड़ के अगले भाग में लाशें बिखर गयी हैं। लेकिन चित्रकार को यह पूरा दृश्य दिखाना सम्भवतः वांछित नहीं है क्योंकि किसी भी चित्र देखने वाले की आँख उस बुड्ढे की फटी हुई आँखों से टकराये बिना नहीं रह सकती जो लाशों के बीच में हाथों के बल उठा हुआ सामने ताक रहा है। इतनी तीखी उसकी निगाह है, और आग फेंकती हुई कि देखते ही रोयें सिहर जाते हैं। इस आँख ने पूरे चित्र की भयङ्करता दबा दी है और सारी मृत्यु, गोली तथा चीख पुकार को पृष्ठभूमि में ढकेल कर उसी रस का संचारी मात्र बना लिया है जिसका कि वे स्थायी रूप में प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

इन छः आँखों की छाया सदैव मेरे ऊपर पड़ती रही है, किन्तु इधर कुछ महीनों से उनका कर्त्तव्य और भी बढ़ गया था। इस ग्रन्थ के लिखने की प्रेरणा चाहे जहाँ से मिली हो, लेकिन यह स्वीकार करने में मुझे बिलकुल हिचक नहीं कि इस पूरे काव्य की पंक्तियों की राह पर चलते समय मेरे ऊपर ये छः आँखें हमेशा छायी रहीं। कैसे नाटकीय ढङ्ग से दो भूखी आँखें एक ओर हो जाया करती थीं फिर उनके दूसरी ओर राह की ओर घूरती दो आँखें आकर खड़ी हो जाती थीं। इसी बीच में दाँतों पर उठती हुई पृथ्वी की आकृति खिंच जाती और ठीक उन्हीं दाँतों और पृथ्वी के पास व्यस्तता से भिंची हुई दो आँखें उभर जाती थीं। इन छहो आँखों ने मिल कर आसानी से एक सार्थक कथा की सृष्टि मेरे लिए कर दी। पूरे प्रबन्ध काव्य (महाकाव्य कहने की इजाजत मेरी छोटी बुद्धि नहीं देती) की यही एक आधार भूमि है:—

जैसे कोई खींच ले गया तुम्हें अतल तल के नीचे
जहाँ लड़ रहा मानव पल छिन अपनी लाचारी से

× × × ×

सिन्धु तट पर खड़े बापू धीर चिन्तित शान्त

× × × ×

पृथ्वी स्थापित हुई क्रोध के बीच सिन्धु के
एक साँस भी ले न सके जन शूकर विह्वल

माँग, चिन्ता और स्थापना इन तीन भूमियों में ही कथा का पूर्ण विस्तार है।

और यह 'स्थापना' ही तो मूल है पूरे जन संग्राम की। इस स्थापना, निर्माण, बलिदान, माँग, चिन्ता आदि को भी एक ही वाक्य में सीमित किया जा सकता है। 'मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।'

मैं स्वतन्त्र होने लिए प्रयत्न कर रहा हूँ। जब इस प्रयत्न का विचार आता है, तब मुझे अपने पास के चबूतरे पर रहने वाले उन मजदूरों की याद आये बिना नहीं रहती—

वे छः या सात होंगे। शाम होने पर कहीं से लकड़ी उपले लिये वे वहीं भिन्न भिन्न दिशाओं से आकर मिल जाते हैं। फिर एक ढेर बना कर नीचे आग रखते हैं और धीरे धीरे धुआँ उठता है। धुआँ शरीर बढ़ाता है फिर गाढ़ा होता है और ऊपर की नीम की डालों से उलझता आसमान में चला जाता है। हवा हुई तो कभी इधर कभी उधर बिखर जाता है लेकिन रङ्ग गाढ़ा से गाढ़ा होता ही जाता है। धीरे धीरे रात घिर आती है। वे सातों मजदूर जो चुप चाप उसे घेरे बैठे रहते है अब फूकना प्रारम्भ करते हैं। फूँकते ही रहते है जब तक कि लाल पीली रङ्ग की पहली लपट ऊपर उठ कर धुए का काला हृदय प्रकाशित नहीं कर देती। हलके लाल प्रकाश में पसीने से तर सात चेहरों पर खुशी उछल जाती है।

यह अग्नि की प्रथम लपट है।
यह प्रयत्न है और उत्पत्ति है।

इसलिए जब काली जातियों के बीच सम्मान और जागरण की पुकार उठाते गान्धी को मैं देखता हूँ तो बरबस वह दृश्य आँखों के आगे उमड़ आता है। दाण्डी के पथ पर—

घिरे धुएँ के बीच अग्नि की
प्रथम लपट तुम को प्रणाम है

कह कर मैं स्पष्ट देखता हूँ कि घोर उमड़ता धुआँ है, जिसका अन्तर भेदती पहली प्रकाश-रेखा भक् से जल उठी है।

× × × ×

इन चित्रों के उपस्थित करने और निर्माण की कहानी कहने के कई मतलब मैं गिना सकता हूँ जिनमें सब से बड़ा जो है वह तो कह ही चुका हूँ पर दूसरी ओर इसका सीधा सम्बन्ध मेरी काव्यकला से भी है

मैं कविता लिखने के पहले चित्र बनाता हूँ।

प्रयत्न विशाल है!

'प्रयत्न विशाल है' कहने में मित्रों का व्यंग और भय मैं समझता हूँ, और स्वीकार करता हूँ। किन्तु जितना सोचकर वे काँपते हैं उतना ही मैं सोचता तो एक क्षण भी बेचैन न हुआ होता। मैं इस विशालता को उनसे अधिक गम्भीर कर के देखता हूँ।

मैं सोचने वालों की सीमा जानता हूँ। मुक्तक में वे 'गुंजन' 'दीप-शिखा' आदि तक सोच सकते हैं, उपन्यासों में 'शेखर एक जीवनी' की गहनता पर चकरा सकते हैं। रहस्य तथा छायायुगीन प्रबन्धों में वे 'कामायनी' या 'तुलसीदास' की उड़ान भर सकते हैं, किन्तु लौकिक चरित्रों को लौकिक परिस्थितियों में रख कर वे हल्दीघाटी, जौहर, आर्य्यावर्त्त, नूरजहाँ आदि से अधिक की कल्पना कर ही नहीं सकते।

एक क्षेत्र में जो सीमा शेखर तक विस्तृत है, दूसरे क्षेत्र में 'जौहर' तक सीमित है (नागरी

प्रचारणी सभा ने गद्य में सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ 'शेखर एक जीवनी' माना है, और पद्य में सर्वश्रेष्ठ काव्य 'जौहर') अपने २ क्षेत्र में दोनों की मूर्धन्य की सी स्थिति हो सकती है, किन्तु विचार की गम्भीरता, चिन्तन के आवर्त और विकास की चेतना की कसौटी पर तो जौहर की कोई स्थिति ही नहीं होगी जब कि गम्भीरता के ये साधारण गुण अन्य भाषाओं की कविताओं में तभी आ चुके थे जब भारत में न तो रत्नसिंह थे और न अलाउद्दीन ही। मेरे भीतर के हिन्दी के पाठक से अधिक दु:ख मेरे हिन्दी के आलोचक को है, जो इस असमानता को ठीक नहीं समझता। 'जौहर' का द्विवेदी युग या 'नूरजहाँ' का भदेस या 'आर्यावर्त्त' का रङ्गमंच का हलका ओज 'शेखर एक जीवनी' 'कामायनी' 'तुलसीदास' की मौलिकता और गत्यात्मक स्थिति के साथ तो रखा ही नहीं जा सकता। लेकिन यदि दुर्भाग्यवश आपको रखना पड़ रहा है तो उसके लिए हम आप सभी दायी हैं।

दूसरा प्रश्न सम्मुख है राष्ट्रीय जागरण और साहित्य के सम्बन्ध का। इस सम्बन्ध में युवक साहित्यिक संघ की बैठकों के माध्यम से मैंने पूछा था कि हमारे बुद्धिजीवियों की इस राष्ट्रीय-उत्थान में क्या स्थिति है? पूछा इसलिए था कि सचमुच उनकी कोई स्थिति ही नहीं रह गयी थी। हिन्दी साहित्य में दो विरोधी स्वर तो स्पष्ट है। एक प्रगतिशील (कम्युनिस्ट) और दूसरे संस्कृति आदि की बात करने वाले शाश्वततावादी। इधर बीच समाजवादी दल में भी साहित्यिक दीक्षित हुए हैं! और जैसे उनकी (मार्क्स-वादी) नीति कम्युनिस्टों के 'मार्क्सवाद' से अलग है वैसे ही वे चाहते हैं कि साहित्य में भी वे विशेष 'टाइप' बनालें।

यह तो हुई योजना की बात किन्तु जहां तक निर्माण का प्रश्न है, उसका स्वरूप अभी एक दम अस्पष्ट है। दूसरी ओर हिन्दी की सम्पूर्ण प्रयोगभूमि पर प्रगतिशीलों की छाप है। उनके प्रयत्नों की गुरुता से इनकार करके नया पथ चलाने से अच्छा और विद्वतापूर्ण यही होगा कि वे उनकी ही शैली ग्रहण करें और विकास करें तभी तो कदम आगे बढ़ेंगे नहीं तो लिखने के नाम पर '१९४२' या 'सुभाष' साहित्य रच कर पार पाना जैसा हास्यास्पद हो रहा है वह छिपा नहीं है।

आखिर इस क्षेत्र में इतने बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन की परम्परा होते हुए भी गम्भीर ग्रन्थों की रचना क्यों नहीं हुई? इतनी क्रान्ति भीतर लिये ये नवीन प्रगतिशील क्या वन्ध्या ही रह जायेंगे? लेकिन यह दशा केवल इन्हीं की नहीं है। पूरा राष्ट्रीय आन्दोलन केवल सोहनलाल द्विवेदी ऐसा एक ही हवाई शक्ति पैदा कर सका जो चिन्तक से अधिक चारण है। क्रान्ति में वन्ध्यागुण नहीं होते ऐसा शास्त्र कहते हैं। हमारे एक मित्र आलोचक १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव खोज रहे थे। पाठकों को रंज होगा जानकर कि उन्हें एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं मिला जिसका नाम वे उस स्तर के लेख में ले सकते। गान्धी साहित्य के सिलसिले में गुजराती लोक गीतों की एक पुस्तक पढ़ते समय कुछ अद्भुत कल्पनाओं पर हर्ष हुआ पर साथ ही साथ रुलाई भी आई कि वैसी पंक्तियो हमारे राष्ट्र-कवि भी लिखने में समर्थ नहीं हो रहे हैं।

एक साहित्य प्रेमी को ये अभाव बेचैन कर देने को काफी हैं। इसलिए जब काशी में नये प्रगति-शील लेखक संघ की स्थापना में मेरी कार्य शीलता की आवश्यकता समझी गयी तब मैंने देखा कि संस्था के ऊँचे पदाधिकारी बनने या चुनने के पहिले प्रत्येक जन को इस कमी की बेचैनी का अनुभव करना चाहिये। मैंने यह कहा भी और लाचारी भरी स्वीकृति भी पायी।

आवश्यक था कि पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन की मूल भावना का चित्र उपस्थित किया जाता, (अब तक यह नहीं हुआ यह लज्जा की बात है) जिसमें जनता के विकसित स्वरूप का चित्रण किया जाता। 'रघुवंश' के कवि का कार्य्य इस कार्य्य की भूमिका बन सकता था (क्योंकि उसके पश्चात वैसी विस्तृत कथा-रेखा वैसी विशाल चित्रात्मकता तथा वैसी संवेदना लेकर एक भी प्रयत्न नहीं किया गया) यद्यपि रघुवंश की संकुचित भूमि का विस्तार यहाँ आकर आशा से भी अधिक करना होता। ऐसे एक काव्य की

आवश्यकता के साथ साथ एक ऐसे चरित्र की आवश्यकता भी जुटी हुई थी जो पूरे जन-आन्दोलन के मूल में स्थित हो। सन्देश, मानवता के विकास और एक व्यक्ति के भीतर स्तर पर स्तर विकसित होते गतिशील मानव का अभिव्यक्ति-व्याकुल चित्रण यहाँ आकर अत्यन्त आवश्यक हो गया था। आदर्श रूप में जिस साहित्य में 'मनु' और 'तुलसीदास' की प्रतिष्ठा हो चुकी हो उसमें यथार्थ की दृष्टि से वैसे ही विकसित आवर्तनों में स्थित मानव-मस्तिष्क का चित्रण अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

भगवान रामचन्द्र तो हजारों वर्ष पश्चात् तुलसी के प्रधान चरित्र बन सके थे। क्योंकि उनके माध्यम से एक चेतना को मुख प्राप्त होता था। 'महामानव' के मूल में भी गान्धी का चरित्र स्पष्ट है, जैसे रामायण के मूल में राम का पूर्ण जीवन स्थित है। इस ओर 'रामायण' ही मेरा आदर्श रहा है। (क्योंकि रामायण के पश्चात् ऐसा प्रयत्न हुआ कहाँ) रामायण में राम के चरित्र के अतिरिक्त एक युग का सन्देश है जो प्रधान न होते हुए भी प्रधान है और उस काव्य की संजीवनी शक्ति है। महामानव में भी गान्धी के जीवन से प्रधान जनता के जागरण की टेढ़ी सीधी रेखा है जो प्रत्येक स्थल पर उभरती गयी है और आप चाहें तो अलग से उसे एक नये काव्य के रूप में प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ सकते हैं।

लेकिन रामायण के 'निर्वेद' (उत्तर काण्ड) तक मानव अब भी नहीं पहुँच सका है जिस कारण इस 'गोदान' के यथार्थवादी युग में मुझसे 'रामराज्य' की कल्पना बनी नहीं। मैंने ग्रन्थ को संघर्ष में ही छोड़ दिया है क्योंकि मानवता अभी राह पर ही है।

यद्यपि 'रघुवंश' या 'रामायण' की महत्ता और 'महामानव' की क्षुद्रता में उतना ही अन्तर है जितना कवि कुलगुरु कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास और मेरे बीच है किन्तु इससे मेरे क्षुद्र प्रयत्न की ईमानदारी पर सन्देह न होना चाहिए। मेरे इस काव्य की राह पर अभी एक भी चरण चिह्न नहीं है, इसी से वह पीछे कोसों दूर टिमटिमाते दीपकों की ओर देखकर उन्हीं की गरमी अपने पैरों में भरने को लाचार है।

मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि महामानव सर्वथा नया प्रयत्न है। इस दिशा में अन्य प्रबंध-काव्यों से न तो कथा निर्माण में कोई मदद मिल सकी है और न तो वातावरण उपस्थित करने का तरीका ही वे मुझे सिखा सके हैं। इस दिशा में प्रयुक्त विधियाँ सर्वथा नयी भले न हों किन्तु कम से कम उस रूप में उनका प्रयोग हिन्दी में अभी नहीं हुआ है।

किन्तु इसके माने यह नहीं कि मैं उनके संस्कारों से इनकार करता हूं। मेरे कण्ठ में पिछला छायायुग, प्रगतियुग सभी बोल सके हैं। और मेरे विचार से आज के प्रबन्ध काव्य के लिये यही आवश्यक है। जैसे टैगोर के पीछे कबीर और उपनिषदों की गहन छाया है, वैसे ही मेरा कवित्व भी पिछली छायाओं से झिलमिल है मधुरता और करुणा के स्थल पर छायायुग के आँसू-सिक्त आलम्बन और उत्कर्ष को अगाह प्रगतियुग का ओज स्पष्ट है। भरसक वातावरण उपस्थित कर देने का प्रयत्न मैं करता हूं, जिसके लिये सर्वाङ्गपूर्ण चित्रों और ध्वनियों का होना आवश्यक है फिर आता है कथा का विकास। मैंने चित्रों के माध्यम से कथा का विकास किया है, ऐसी स्थिति में गद्य की सी विवेचना हो ही नहीं सकती थी। पूरे सिद्धान्तों को बार बार पढ़ने के पश्चात् उनका एक चित्र उपस्थित किया है। ऐसे विकास में रूढ़ घटनाओं का आग्रह भी अधिक स्पष्ट नहीं दीखेगा। यों तीन चरणों में युग नापने की कल्पना में कथा का विकास स्पष्ट है।

दो एक शब्द कविता की शैली के सम्बन्ध में भी। मैंने पूरा वर्णन यों बराबर बदलते छन्दों में किया है और कहीं तो कथा की गति के हर मोड़ पर छन्द बदल गये हैं, किन्तु जहाँ एक ही छन्द में पूरा वर्णन किया गया है वहाँ भी आरोह अवरोह की गति पर ध्यान रखते हुए दीर्घ के पश्चात ह्रस्व कर के फिर दीर्घ की राह पकड़ी गयी है। तुक शब्दों, मात्राओं के अतिरिक्त स्वरों तक पर मिलेंगे। ऐसा प्रयोग इङ्गलिश में तो बहुत है, पर हिन्दी में निराला जी के अतिरिक्त और कम ही दिखायी पड़ा। लेकिन

इससे ध्वनि में जो वृद्धि होती है वह अपूर्व है। क्षिप्र स्थलों पर गति भी क्षिप्र है, पर गम्भीर स्थलों पर पूरी फैल कर गम्भीर पद धरती चलती है।

वर्ग विभाजन

कहिए आपके महाकाव्य की क्या दशा है?

प्रश्न सुनते ही मैं इसमें के 'महा' पर दिये गये जोर का भी अन्दाज लगा सकता हूँ, पर यदि केवल महाकाव्य के साधारण नियमों से ही उनका मतलब है (जिस पर पहले गिनाये सभी प्रबन्ध काव्य खरे उतर कर 'महाकाव्य' हो सकते हैं) तो मेरा यह काव्य 'महाकाव्य' कहे जाने में किसी विशेष सुख का अनुभव नहीं करेगा क्योंकि महाकाव्य की नियमावली की संकुचितता में मेरी पटभूमि का अटना मुश्किल होगा। इसी से मैंने इसे—

जन जागरण की महागाथा

कहा है। महागाथा महाकाव्य से तुलना में बड़ी चीज भले ही न हो लेकिन उससे विस्तृत तो अवश्य ही है।

अन्त में मुझे यही कहना है कि हिन्दी साहित्य इस दिशा में प्रथम प्रयोग समझकर इसकी असफलताओं पर अपना क्रोध रोकेगा। मेरी दृष्टि से इसका उत्तर कड़ी आलोचना उतना सही न होगा जितना इसी राह पर प्रस्तुत किया इसका अगल कदम। मैं निर्माण को सब से बड़ा उत्तर समझता हूँ।

धन्यवाद

कवि श्री त्रिलोचन शास्त्री की तीक्ष्ण दृष्टि के बीच से पूरा काव्य गुजरा है और हमेशा से मेरी कविताओं पर ठंढे रहने वाले तथा मेरी मानसिक उलझन पर व्यङ्ग करने वाले ये महाराज इस बार मन से मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, इसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया भी जाय तो वे लेंगे नहीं, मगर जिक्र करने में क्यों चूकूँ। प्रसिद्ध गान्धीवादी लेखक तथा अर्थशास्त्री श्री रामकृष्ण शर्मा पूरी पुस्तक में मेरे साथ प्रेरक के रूप में रहे हैं। इनका मेरे ऊपर जो विश्वास है उससे मैं दबा हुआ हूँ। डी० ए० वी० कालेज के प्राध्यापक श्री विश्वनाथ राय जी ने मेरे लिए अपने पुस्तकालय के द्वार ही खोल दिये उसके लिए उन्हें धन्यवाद है। यों बार बार पुस्तकें लौटाते लेजाते वे धन्यवाद देते गये हैं, जिसके मुकाबिले यह कुछ नहीं है। मेरे मित्रों ने जो मेरी छोटी आलमारी और टेबुल को पुस्तकों से भर कर मुझे पढ़ने को लाचार किया उसके लिए धन्यवाद दे देना मैं उचित समझता हूं। अपनी सारी योजनाओं के ईंटगारे, श्री शिवमूर्ति मिश्र 'शिव', भइयालाल सिंह, मंगलनाथ सिंह, रामविनायक सिंह, कमलाप्रसाद सिंह, नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय तथा देवदत्त शर्मा तो मेरे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद क्या दिया जाय! कवि श्री शम्भूनाथ सिंह, आलोचक श्री शिवनाथ एम० ए, श्री अशोक जी सम्पादकवर श्री राजवल्लभ सहाय, तथा भ्रमर जी को केवल इस ग्रन्थ के नाते तो नहीं लेकिन पूरे जीवन के नाते नमस्कार करना मैं नहीं भूलूंगा।

इस कर्फ्यू, सनसनी, अंधेरे तथा मृत्यु के बीच प्रकाशक तथा मुद्रक श्री परेश गोप, के साथ मैंने पूर्णतः संस्था की तरह कार्य किया है। यह मुझे अच्छा लगा क्योंकि मेरे ऐसे संस्था-प्राण का तो यही जीवन है।

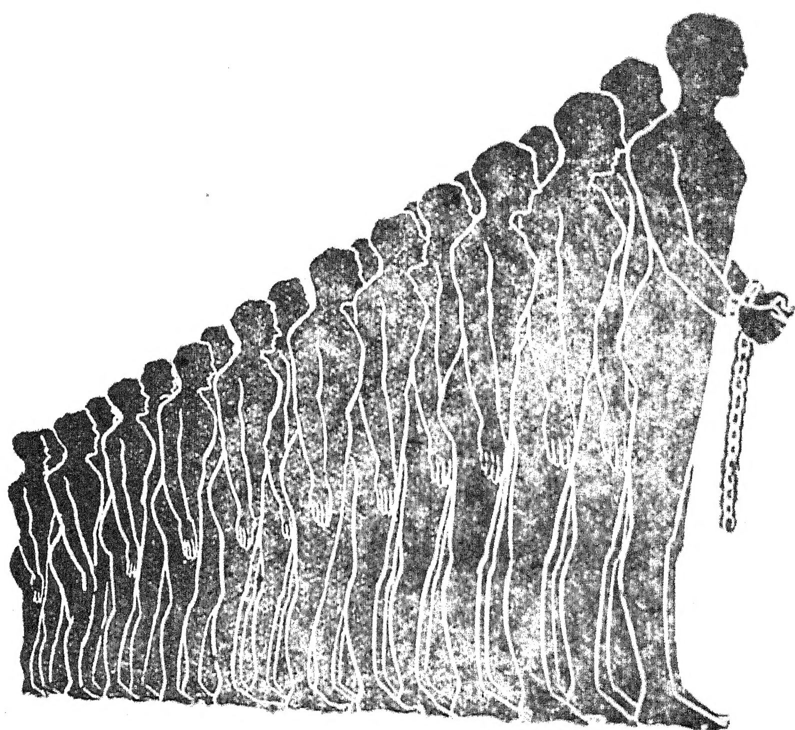
कर्फ्यू की डुग्गी बज रही है पास ही में मृतक
के शव पर झुकी स्त्री रो रही है। बादलों वाली रात
है पर मैं मोमबत्ती के प्रकाश में लिखे जा रहा हूँ।
क्योंकि कार्तिक-पूर्णिमा का यह शाश्वत नहीं
तात्कालिक गुण है।

ठाकुरप्रसाद सिंह,

ईश्वरगंगी

११ बजे रात,

वन्दना जन के अमिट आयास की
वन्दना फिर फिर उमड़ते हास की
तोड़ वन्धन खड़े जन की वन्दना
वन्दना जन के ज्वलित इतिहास की



तुम चले
तुम चले एक युग की सफल कामना

तुम उठे एक क्षण में
उठा मेरु भी
तुम झुके एक पल में
झुकी वन्दना
तुम चले एक युग की सफल कामना
तुम चले

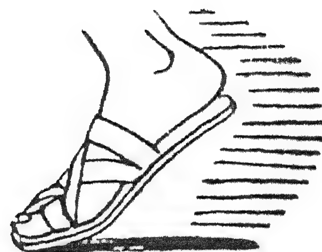




तुम खड़े, एक पल में
अडिग प्राण थे
तुम अड़े फिर निछावर
जगत् प्राण थे
तुम हँसे प्राण की खिल गयी
अर्चना
तुम चले एक युग की सफल कामना
तुम चले

तुम भुजाएँ उठाये
खड़े राह पर
रोप लेने चले वज्र
मृदु हास पर
बाँह की दूर फैली सुखद छाँह में
चल रही क्षुब्ध जग की
विकल साधना
तुम चले एक युग की सफल कामना
तुम चले



तीन डग में नाप ली

तुमने युगों की राह



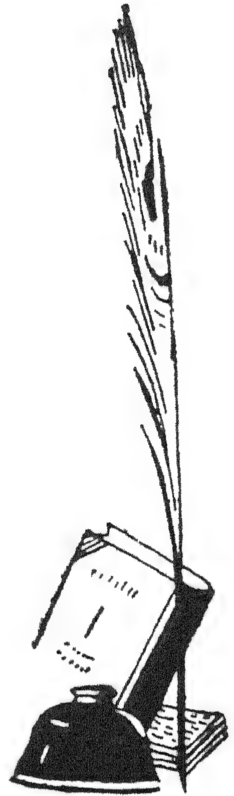
प्रथम सर्ग

[अफ्रीका बापू की प्रथम कर्मभूमि है। अफ्रीका ने ही बापू का निर्माण किया है और आवरण में लिपटी आत्मा तथा सत्य का उद्घाटन किया है। वहीं जनता की लाचारी ने बापू को जगाया है। बालासुन्दरम् के आने के दिन से बापू का वह मुख्य जीवन प्रारम्भ होता है, जिसमें दलित के लिए संघर्ष हुआ है और पराधीन के लिए उठने का सन्देश ध्वनित हुआ है। बालासुन्दरम् का आकर अपने कष्ट कहना और बापू का उठना जनता के जागरण का एक महापर्व है जिसे सोचते ही कालिदास के 'रघुवंश' के १६ वें सर्ग का चित्र आँखों में झूल जाता है। राम आदि के न रहने के बाद अयोध्या नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और उसी की ओर से अयोध्या की श्री स्त्री रूप में कुश के सम्मुख पहुँचती है। एक थी कवि की कल्पना, दूसरा है प्रत्यक्ष सत्य।]

गोरी-झंझा में मन—आँखें मींचे विवश अमान
पड़ा एक युग से भू-लुण्ठित आतुर हिन्दुस्तान
राजपथ सब चन्द 'छी छी'
की महाध्वनि उठ रही है
घोर 'छी छी' में झुकी
लाचार जनता चल रही है

चोट, फिर अपमान, फिर फिर
चोट, फिर अपमान होता
घिरा चोटों से विकल मन
मनुज का लाचार होता

एक भी ली साँस जिसने
नहीं तन आकाश की
माँग जिसने नहीं की
अपनी उबलती प्यास की

जहाँ केवल पीठ, केवल पैर,
भग्न गिरे हुए मन
वहाँ सत्ता शीश की क्या
प्राण का क्या ज्वलित स्पन्दन

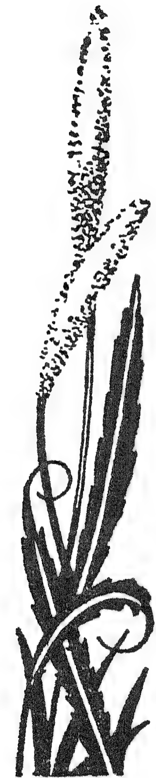
वहीं सिर ऊँचा किये
मीनार के आगे खड़े तुम
थाम पगड़ी देश की
हुंकार के आगे अड़े तुम

हठ इसे कहें या जगने की आशा
कुछ की कुछ कह न जाय कम्पित भाषा
अपना ही लेकर रक्त नहा डालें
क्या यही जिन्दगी की है परिभाषा

इनकार हमारा रंग बदलने से
इनकार हमारा झुककर चलने से
हम नहीं चलेंगे काली छाया में
इनकार हमारा नीचे रहने से



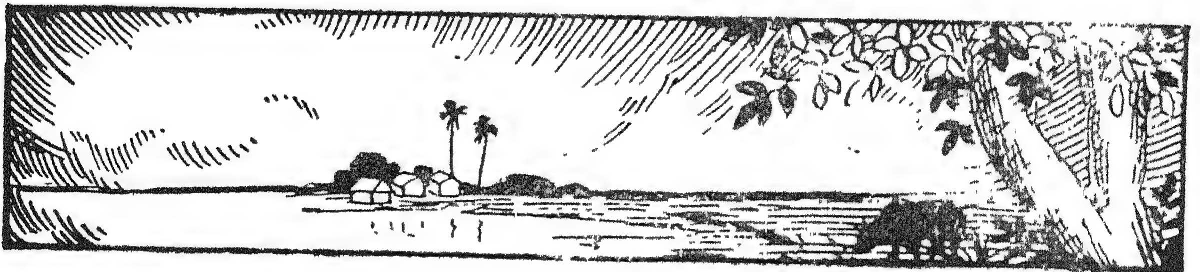
इतनी ही सी माँग और इतना ही सा आयास
जाग गये पा एक सहारा ये युग युग के दास
डर से झुके काँपते पत्ते से लाचार हृदय में
छुईमुई सी कुण्ठित मन की चेतनता थी भय में
पा मनुष्य की नव मनुष्यता, पा जीवन की साधें
आखिर जीवन कब तक ठिठका रहे चेतना बाँधे
आया रुदन, हिचकियाँ आयीं, तड़पन की लाचारी
फिर अँगड़ाई धीरे धीरे हिलीं बेड़ियाँ भारी





ओह क्षुद्र सी देह, क्षुद्र से हाथ, क्षुद्र मन पाये
केवल साँसों के बल जीवन कितना बोझ उठाये
भूलेगी क्या शाम तुम्हें बापू, जब दुख की छाया
लिये क्षुब्ध हुंकार सुन्दरम् द्वार तुम्हारे आया
टूटे दाँत रक्त से लथपथ खड़ी सामने हार
वह न एक मजदूर, पराजित की थी करुण पुकार
उस जनता की मूर्ति, जो कि उठ सकने में लाचार
उस जनता की हार, ढही जिसके पुर की दीवार

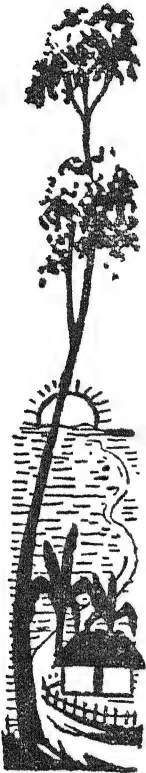
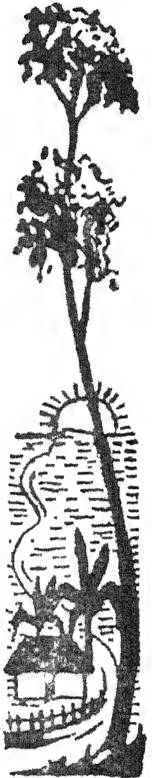
आज गये युग बीत
रात्रि में नीर भरी बदली सी
पथ पर करुणा, बूँद गिराती
खोयी सी पगली सी



कुश के द्वार खड़ी थी
हत-श्री आँसू ले आँचल में
शून्य, भग्न, साकेत नगर की
श्री उस नीरव पल में

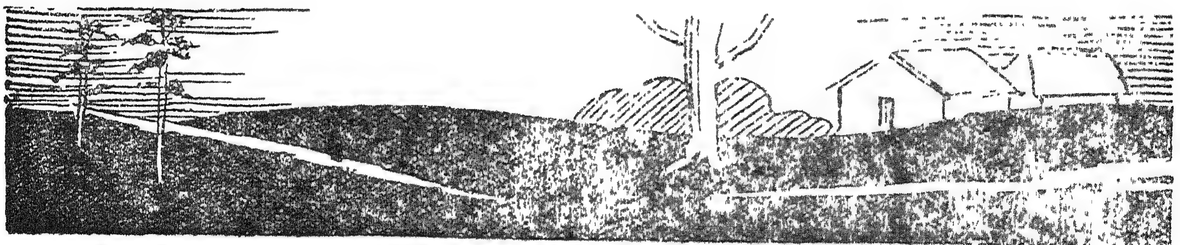
उस दिन भी, भग्नावशेष
भारत का रुदन बिचारा
खड़ा द्वार पर पगड़ी में
ले तप्त लहू की धारा

श्री का आँसू खींच ले
गया कुश को अपने द्वार
तुम्हें खींच ले चला रक्त
वह कर्मक्षेत्र के द्वार

श्री के शून्य नयन में विम्बित
वे गवाक्ष थे सूने
जिनकी शोभा खींच कालिमा
भर दी थी क्रन्दन ने

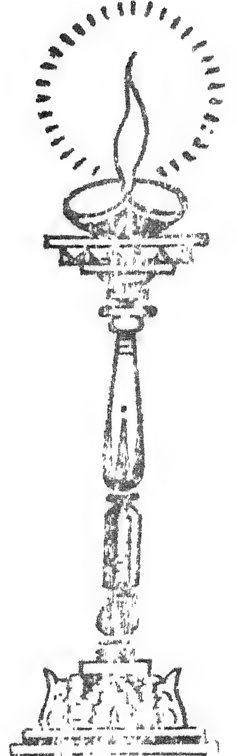
स्तब्ध पुतलियों में तिरता
पथ का सूनापन आया
जिन पर से फिर गयी
किसी दिन बरबादी की छाया



सूने सरयू-तीर बरौनी में
आकर झुक जाते
सूने वे पतझार नयन के
आँसू से झर जाते

दलित अयोध्या की भारी सी
साँझ झुकी गेहों से
ऊषा कबकी मुरझ गिरी
अधरों के आरोहों से

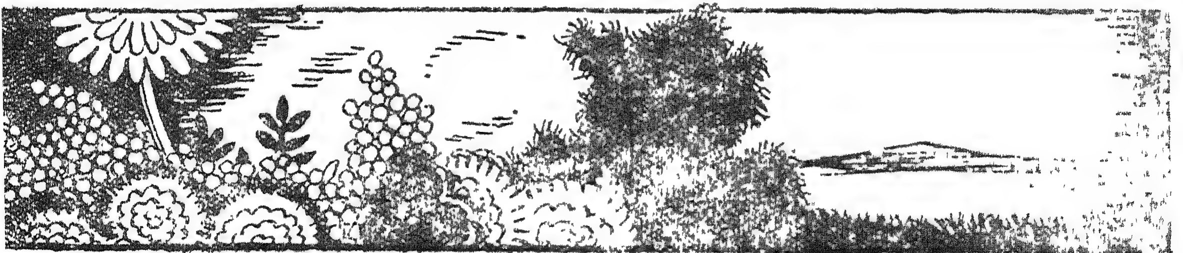




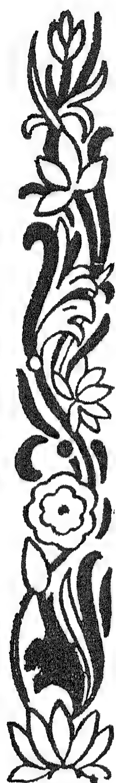
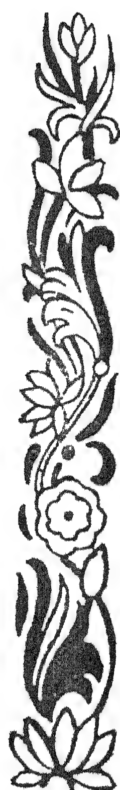
यह मजदूर ढहे मानव की हार बना, लाचार बना
आँखों में युग युग से संचित भय का कुहरा घना तना

यह खंडहरों का सूनापन
नयनों से झाँक रहा प्रतिपल
काली कोटरगत आँखों में
होते प्रकाश के प्राण विकल

छाती के घेरे में घिरती
सिर थाम झुकी तरुणाई भी
माथे पर साँझ बुझ रही थी
थी सुबह न जिस पर आयी भी

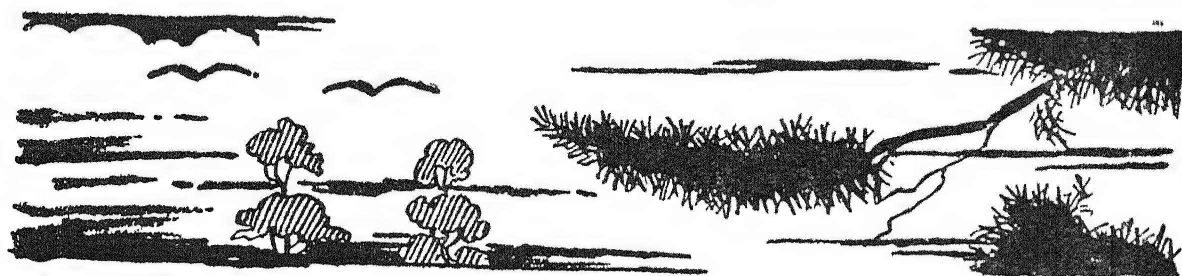


अंग अंग पर लगी मार की मुहर छप
पीड़ा की
मानव की मिट्टी, चोटों से मूर्ति बनी
व्रीड़ा की
सिर पर झरती धूल हँस रही व्यंग बनी
बरबादी
बन्धन बजते चले चीख़ती चलती थी
आजादी

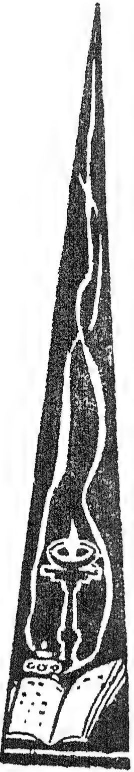
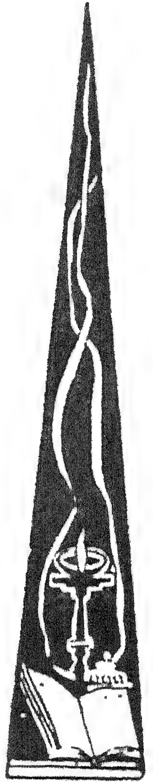
आँखों में ले गंगा-जमुना के जल
जल के ऊपर करुणा के कण छल छल
नीचे ले क्षुब्ध——अरुणधारा मुख में
संगम पीड़ा का खड़ा रहा विह्वल

तुमने झाँका आँखों के
वातायन से मानव को
त्रस्त, झुके बेहाल, गिरे,
पशु बने दीन मानव को
जैसे कोई खींच ले गया
तुम्हें अतल तल नीचे
जहाँ लड़ रहा मानव
पल छिन अपनी लाचारी से



इतना कष्ट मृत्यु का दंशन
मरने की लाचारी
फाँसी के तख्ते पर झूली
जान कभी की हारी

सब कुछ जो खो चुका
कभी का, अब क्या था जो खोता
यह न युद्ध जीवन से
और न जीवन से समझौता

तुम रुक न सके उठकर बापू चल पड़े मिटाने अंधकार
जिन स्थानों पर गहरी घाटी थे दिये वहां पर्वत उभार
मानव ने खोल बदल डाली, मिट्टी बन गयी वज्र पल में
लहरें उठ दौड़ीं ओज भरी सागर के शान्त पड़े जल में

अन्ध तिमिर चीरकर
उठी गुहार क्रान्ति की, उठी मशाल क्रान्ति की
उठी मशाल क्रान्ति की

घोर कालिमा घिरी
उठी प्रकाश की लहर
छहर छहर

उठा हहर निराश नर
जगा विसंज्ञ द्वार घर
डगर डगर



प्रकाश की नदी बही अमा विलुप्त भ्रान्ति की
उठी गुहार क्रान्ति की
उठी मशाल क्रान्ति की

प्राण पा उठे सजग
भभक उठे दिये सकल—
बुझे बुझे

ज्योति की पुकार पर
गुहारते दिये दिये
'मुझे मुझे'

खिल उठी प्रकाश से डगर उदास भ्रान्ति की
उठी गुहार क्रान्ति की
उठी मशाल क्रान्ति की
अन्ध तिमिर चीरकर उठी मशाल क्रान्ति की





द्वितीय सर्ग

[अधिकार तो चाहिए किन्तु गान्धी का दृढ़ विश्वास है कि उसके लिए मानव को देना भी कम नहीं पड़ेगा। इस विश्व में पहली दफा जब 'कालों' ने आवाज ऊँची की तब पहले उन्हें यही सिद्ध करना था कि वे भी धरती के पुत्र हैं, इसलिए उसके लिए उनका कर्तव्य किसी से कम नहीं होता। भारतीयों ने युद्ध में नागरिक के अद्भुत गुणों का परिचय दिया। वे आग की राह दौड़े सम्पत्ति के लिए नहीं, केवल देश और जाति के सम्मान की रक्षा के लिए।

काले हबशी और मटमैले भारतीयों की आँखों की धारा एक साथ बही। उसी दिन यह विश्वास उठा कि काली दुनिया अधिक दिन पराधीन नहीं रहेगी।

किन्तु सारी मनुष्यता और सेवा के बदले में मिला कानून-परवाने और दस अंगुली की छाप—अपमान की वह मरणान्तक घूँट, जिसे पीना माने जमीन के अंचल से पुँछ जाना था।

भारतीयों ने इसे इनकार कर दिया क्योंकि इससे भारत का अपमान होता था।

सरकार झुकी, परम विश्वासी गान्धी ने स्वीकार किया।

सरकार ने धोखा दिया, सत्याग्रही फिर उठे और परवानों की होली जल उठी।

एक बार अमेरिका के नागरिकों ने इङ्गलैण्ड के विरोध में चाय समुद्र में फेंक दी थी। इस निश्चय ने उसका रंग फीका कर दिया।]

जब भारत ने हाथ बढ़ाये मिलन के लिए
तब गोरों ने नव बन्धन के दान दे दिये
यहाँ चाह केवल मानव के सम्मानों की
जिसके लिए राह निश्चित की बलिदानों की



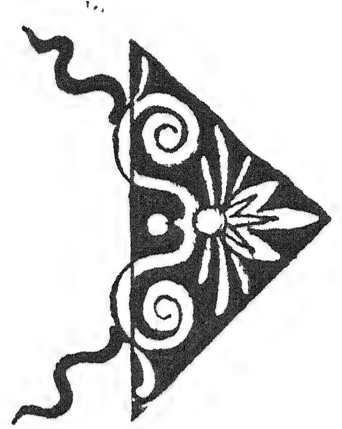
वे भूलते भूल जायें वह
खूनी 'बोअर वार'
जब कालों ने राह चुनी थी
असि की तीखी धार

ऊपर गोलों की तोपों की
दौड़ और हुंकार
नीचे बन्दूकों की चटचट
उठती बारम्बार

हँसी मशीनगनों की घायल
हो तड़पतीं दिशाएँ
फट उठता नभ हहर अग्नि के
फूल बिखर खिल जायें

झरते अग्निकणों में होती
उभ चुभ राह भयानक
राह कि जैसे लिखा अग्नि का
जलता हुआ कथानक

राह नहीं वीणा के व्याकुल
खिंचे भयानक तार
जिसको घेरे नाच रही थी
ताण्डव की हुंकार



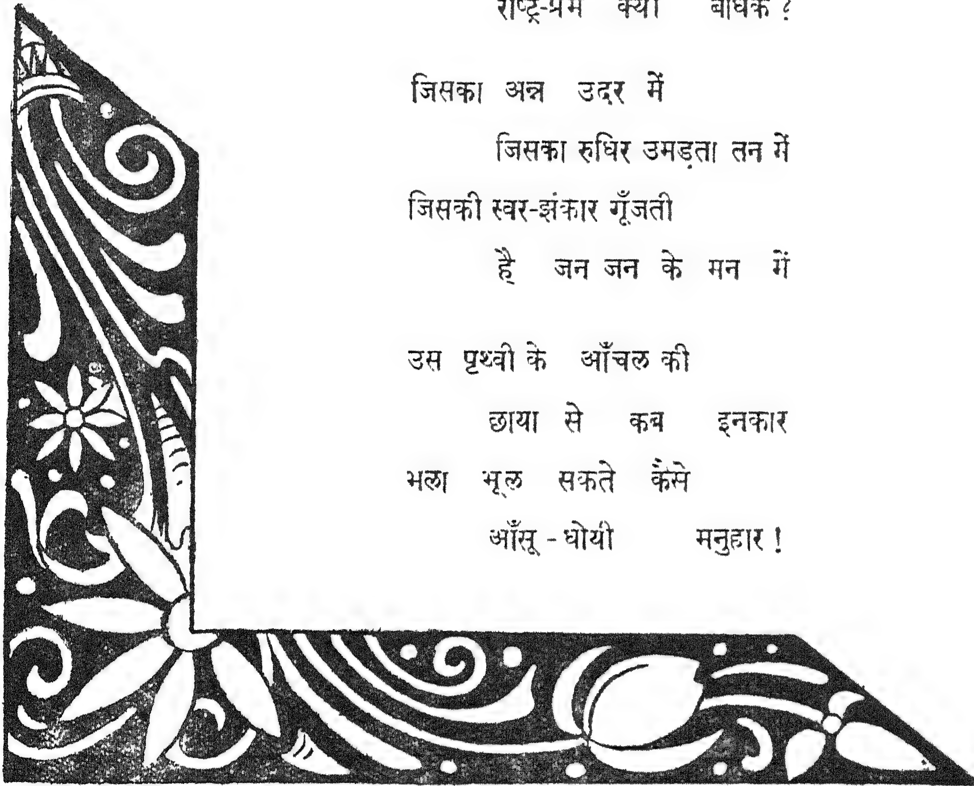
उसी राह पर बढ़ती चलती
चल चरणों की भीड़
तप्त तार पर झंकृत जैसे
करुणा की हो मीड़

कन्धे पर ले बोझ सिसकती
घायल मानवता का
दल, चलता हुंकार गोलियों
पर जीवन-पग रखता

मिट्टी के सपूत ये भी
पृथ्वी के पूजक साधक
मिट्टी के गौरव में होगा
राष्ट्र-प्रेम क्यों बाधक ?

जिसका अन्न उदर में
जिसका रुधिर उमड़ता तन में
जिसकी स्वर-झंकार गूँजती
है जन जन के मन में

उस पृथ्वी के आँचल की
छाया से कब इनकार
भला भूल सकते कैसे
आँसू-धोयी मनुहार !



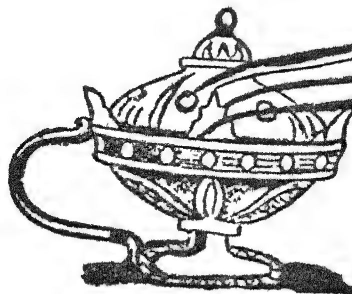
उस पृथ्वी के ऊसर-बन
सरि-गिरि की ज्वलित शपथ ले
आये अधिकारों तक मानव
कर्तव्यों का पथ ले

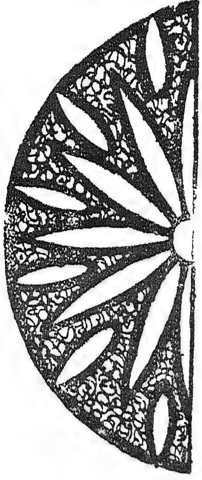
इतना क्रन्दन-क्षोभ-द्रोह की
भूमि बना अफरीका
दो स्वार्थों के संघर्षों की
भूमि बना अफरीका

यहाँ एक प्रस्तुत धोने
को काले धुँधले दाग
और दूसरा घोर अन्ध
गह्वर से आया जाग

एक ढकेल रहा फिर से
तमसा घाटी में जन को
एक रहा इनकार कर रहा
फिर सहना दंशन को

एक ओर रच रहे मिटाने
का पागल त्योहार
और दूसरा किये जा रहा
मिटने से इनकार

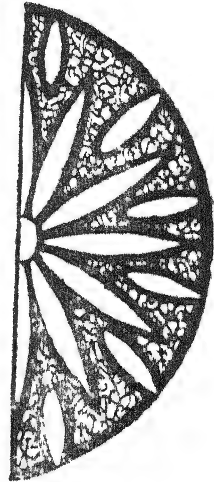




इस मारने मिटाने की बेला
में कैसा त्राण
उड़ते जाते चोट चोट
पर दलित जाति के प्राण

किन्तु लिये आशा की मलयज
विश्वासों का सम्बल
उठा रहे तुम गिरी जाति का
ढहता हुआ मनोबल

सेवा की बन वायु घूमते
घायल डगर डगर पर
बरसे बापू तुम करुणा
के मेघ गगन से झरझर



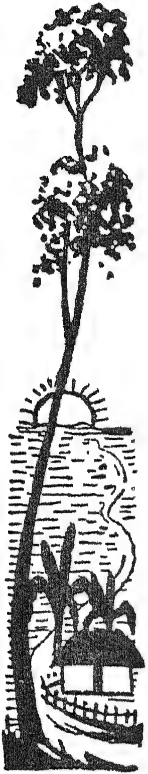
वह जूलू - विद्रोह कहें
या मिटने की लाचारी
उनकी क्षत विक्षत देहों ने
चाही दया तुम्हारी
काली रात सरीखी उनकी
देह रक्त में डूबी
चूर चूर छाती में घायल
सुधि व्याकुल थी ऊबी

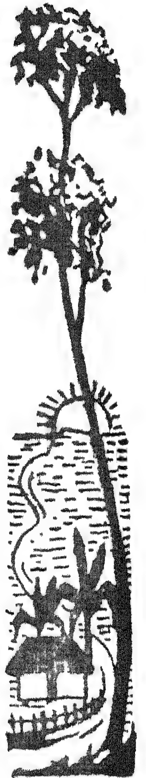


तुम्हें देख। काँपी सिहरी
। मलयज में घायल फूल
आँखों के पट खुले
गयी फिर पीड़ा मन की झूल

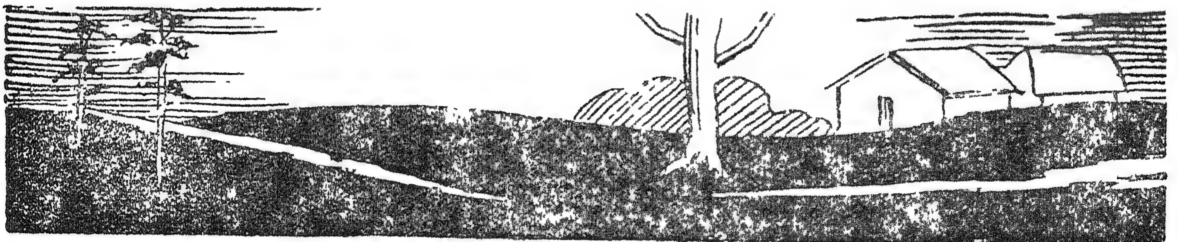
लौट तुम्हारी छाया में
बच्चों से मानव रोये
तुमने भी नयनों के जल में
घाव हृदय के धोये

पा आशा की छाँह
आँसुओं की धुँधली पहचान
उठी कष्ट के ऊपर
कोमल सपने सी मुस्कान





यहाँ न बन्धन जाति पाँति का
गा न भेद मानव का
उमड़ हृदय से मिला हृदय
विजयिनी बनी मानवता
काली आँखों से उमड़ी
झिलमिल करुणा की धारा
जिसके तट पर खड़े
मानवों ने लाचार पुकारा



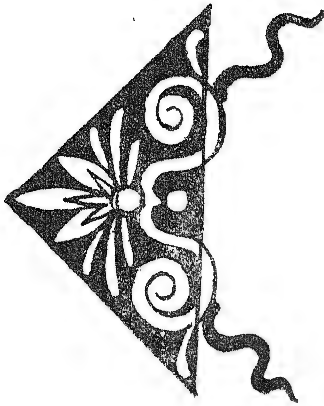
यह न जिन्दगी मानव की
हमको भी जीना होगा
हम भी क्रान्ति करेंगे
चाहे विष भी पीना होगा

काले जग की दबी रहेगी
अब न अधिक दिन छाती
क्रन्दन छोड़ उठेगी आत्मा
बन्धन में अकुलाती

यह विश्वास उसी दिन गूँजा
दो हृदयों के भीतर
एक साथ हुंकार भरें
सब एक ध्वजा के अन्दर

दो दिशि से आ मिले मेघ दो नभ में काले धुँधले
घायल मन की छाँह भाव उभरे कुछ उजले उजले

पर इन सबका अर्थ न हुआ
कि भारतीय कुछ पाते
आशा लिये गरीबों के
कुछ बन्धन ही हट जाते



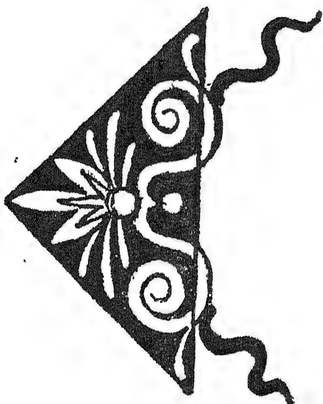
आयी एक न मुक्ति
मिला 'बिल' का अद्भुत बरदान
दस अँगुली की छाप लगाकर
दें अपनी पहचान

रहे नहीं मानव वे, मानव,
मानव पहचाने से
पहचानेंगे उन्हें सभी
कागज के परवाने से

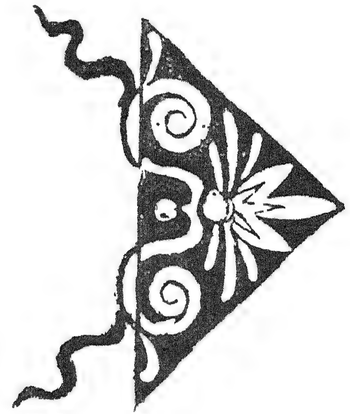
यह अपमान आदमी का
मनु के पुत्रों के तन का
यह अपमान नयन, वाणी,
मनवाले मानव तन का

इतनी आग और झंझा में
अपना तन झुलसा कर
दौड़े जो गरीब पाने
अधिकार अग्नि के पथ पर

उन्हें देखकर। खड़े द्वार पर
भी न अरे पहचाना
माँगा मानव से मानव ही
होने का परवाना



"यह अपमान राष्ट्र का
छिनता है अधिकार तुम्हारा"
खींच उन्हें ड्योढ़ी से
बापू तुमने गरज पुकारा—



"यह कैसा है न्याय, न्याय
के दुर्मद ठेकेदार
निरपराध के लिए बन्द हों
न्यायालय के द्वार

यदि इसका प्रतिकार न
होगा तो अस्तित्व मिटेगा
दोषी इस दुनिया से
निर्दोषी का तत्त्व मिटेगा

हमें यहाँ मर मिटना केवल
सत्य जिला रखने को
चढ़ें यहाँ बलिदान सत्य का
कमल खिला रखने को

यदि हम झुकते यहाँ झुकेगा
ध्वज उस मनुष्यता का
जिसकी लाली में ईसा का
पावन रक्त उछलता

जिसके लिए चढ़े सूली
पर कितने ही मंसूर
जिसके लिए करोड़ों सुकरातों
को विष मंजूर



जिसके लिए कि कितनी
तम से घिरी हुई रातों में
जग की राहें छोड़ साधना
वर ली सिद्धार्थों ने

जिसके लिए हठी मीरा थी
तैर गयी विष - धार
गूँज रही अब भी हुसैन के
दल की ज्वलित पुकार

लिये एक मुस्कान पीर की
दबा प्राण लाचार
खड़ा कबीर राह पर सूनी
बन्द नगर के द्वार

अपने मन पर हाथ धरो
मानव के पुत्रो मानी
और बोल दो अब न चलेगी
यह अपमान कहानी

विद्रोहों का पंथ कष्ट का
गिर गिर कर उठने का
यह ज्वाला का वरण छार
बन बन कर जल उठने का

यहाँ फिसलना मृत्यु और
कमजोरी भूखी हार
आत्मसात कर लेगी विद्रोही
को जो ललकार







यहाँ मृत्यु के मुख में से
कढ़, फिर उछाल तन-प्राण
पथ पर बलिदानी चल
देते टकराते पाषाण

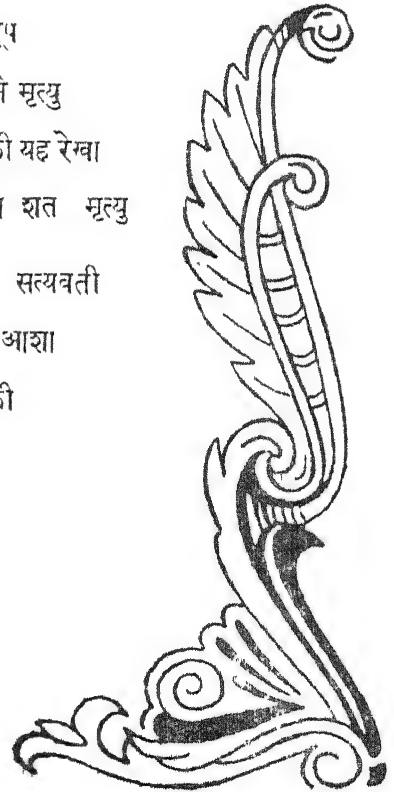
साहस दृढ़ता आत्म-शक्ति
का अर्थ—सफलता जीत
बढ़ो एक ही राह बची
मर मिटें न हों भयभीत"

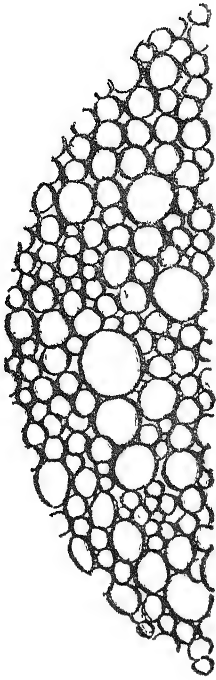
तीन सहस्र कण्ठ मिल
बोले मर मिटना स्वीकार
किन्तु न इस अपमान पंथ
का वरण हमें स्वीकार

भूख प्यास फिर धूप
धूप से जेल, जेल से मृत्यु
किन्तु प्रस्तरों की यह रेखा
मिटे न पा शत मृत्यु

हम मृत्युंजय, सत्यवती
है लगी हमीं पर आशा
हमी दलित मानवता की
हैं आशा और निराशा



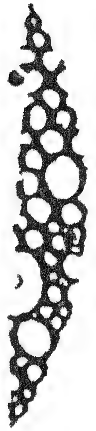




ईश्वर की ले शपथ हथेली
पर रख व्याकुल प्राण
समा गयीं बिजलियाँ उगाने
मिट्टी से नव प्राण

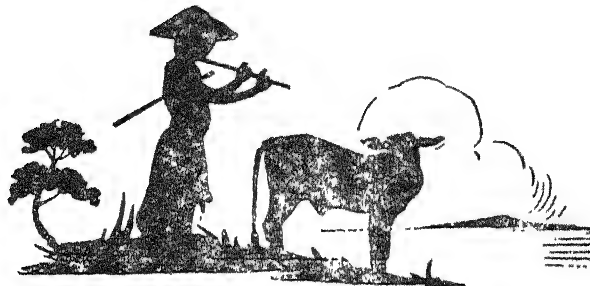
स्थान स्थान पर मरने मिटने
की जागी हुंकार
मिट्टी की लघु देह
छिपाये बिजली की टंकार

परवानों से कर इनकार
पहचानों से कर इनकार
ये लाचार देश के वीर
मिटने से करते इनकार



संघर्षों की नमित गुहार
अन्धकार का कर पथ पार
ये ज्वाला के शान्त पिण्ड
आ खड़े प्रभा के उज्वल द्वार

ये प्रतिकारों के चल रूप
ये प्रशान्त बिजली के रूप
उठे उमड़ते मेघ चीर कर
फैल गये नभ पर अपरूप



नम्र बने स्थिर नयनों से कर जोड़े विनयी वीर
यह सत्याग्रह ढहा दे रहा मन की ही प्राचीर

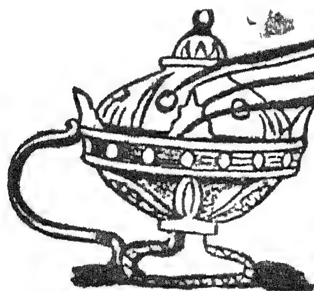
एक घिरता जेल की दीवार में चुपचाप
इधर उठ जाते सहस्रों शीश अपने आप

ये उमंगें लहर की यह लहर का उत्साह
भर रहा इन कन्दराओं में अजस्र प्रवाह
और टकरा कुघड़ जेलों से फिरी छिटकार
जल उठे शत प्राण तुरत उठी नवल हुंकार

अन्त में लाचार थी सरकार
खोलने ही पड़े कारा द्वार
विजय पा लौटे प्रभा के दूत
नव प्रभा से रंग गये घर द्वार

हुआ समझौता किया विश्वास
झुके सगर्व खड़े हुए ये दास
फिरी पथ-पथ ग्राम-ग्राम पुकार
अब न जनता रहेगी लाचार

है न मुख्य विरोध कुछ जन का
और मुख्य न क्षुब्ध थी जनता
मुख्य क्या है लाठियों की चोट गान्धी पर
मोल है बस मीर आलम के समर्पण का





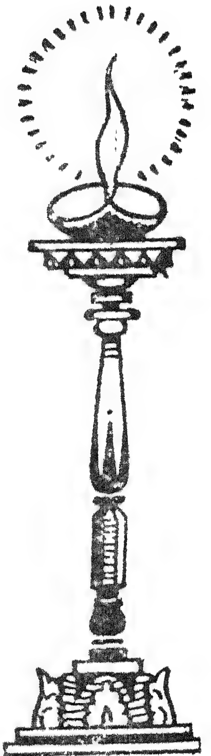
किन्तु यह स्मट्म झुकी कमान
तन गया फिर फेंक खूनी बान
लिये मन में आस जनता के
छिद गये फिर से अजाने प्राण

चाहते वे अचल करना नया बन्धन
पर यहाँ तो कर रहा विद्रोह कन कन
एक बार हटा चुके हम बोझ यह लाचार
फिर न चिन्ता है लदेगा विश्वभर का भार

एक बन्धन प्रेम का स्वीकार
एक माला विजय की स्वीकार
पर न हमको बाँधने वाले हठीले
मरण के ये पाश अब स्वीकार

एक निश्चय एक ही हुंकार
बन्धनों का एक ही प्रतिकार
जले परवाने भभक कर छार
शेष की बस एक ही फुंकार

———





तृतीय सर्ग

[कभी न हारने वाली जनता फिर उठी, ऐसे जैसे क्षितिज से बादल दुन्द बाँधकर उठते हैं।

कितना ही लोगों ने रोका, किन्तु प्रभात के फूल खिले ही।

सरकार ने घोषणा की कि भारतीय पद्धति द्वारा हुए विवाह जायज नहीं माने जायँगे, उनकी रजिस्ट्री कराना आवश्यक है। इस बार नारी पर भी चोट थी।

सीता, सावित्री और द्रौपदी की परम्परा तड़प कर उठ खड़ी हुई। मर्दों के पस्त हौसले फिर उमड़े। पालों की छाती में हवा ने झोंका भरा, नाव आगे बढ़ी। मजदूरों ने कुदालें फेंक दी और हजारों की वह सत्याग्रही सेना बन्धनों की ओर बढ़ चली, लेने नही, उन्हें तोड़ देने।

बन्धन धूल हो गये। आसमान फट गया, जिसमें पेवन्द लगाते लगाते स्मटस की गोराशाही हार गयी।

जनता का ओज असीम था, वह विजयिनी हुई।]

फिर प्राणों के स्वाभिमान जागो
फिर अलख जगाओ
फिर से दलित जाति की दुनिया
अपनी आग उठाओ



मचल रहे प्रकाश - कण
हटा तमस् न रात का
मगर न फूल ही झुके
न पथ रुका प्रभात का

हुआ विहान मृत्यु का
न कब खिली कली कली
पुकारती तुम्हें प्रकाश
के व्रती गली गली




उठी गुहार फिर उठे
उमड़ कि दूत क्रान्ति के
कि द्वार द्वार से उठे
पुकार दूत क्रान्ति के

हिला जिन्हें सकी न मृत्यु
प्रेम की मरीचिका
कि घोर सांकचों घिरी
न जेल की विभीषिका

जिन्हें न एक क्षण भुला
सकीं कठोर रूढ़ियां
उठा रहे जगत
बना बना अदृश्य सीढ़ियाँ



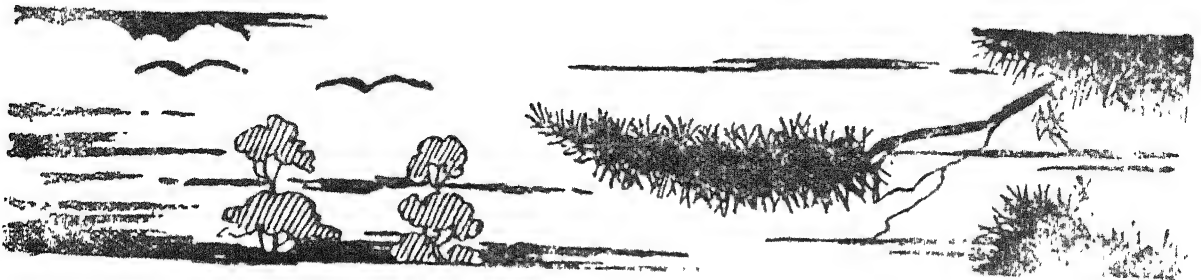
पीढ़ियाँ जगीं महान
भीष्म, कृष्ण, पार्थ की
चले नवीन युद्ध यान
ले नवीन सारथी

उठ गयी उमड़ नयी अटल
कि ध्येय धर्म की ध्वजा
ध्वनि उठी नयी, नया
निशान युद्ध का बजा

मिटी हुई लकीर पर
नयी लकीर खींचकर
नवीन मेघ के व्रती
चले प्रकाश की डगर

घोर अन्ध की समाधि
चीरकर भुजा उठा
प्रभात की पुकार ले
प्रकाश जगमगा उठा

खुल गये फिर सींकचों के दाँत
चल पड़ी फिर मानवों की पाँत
तन गयी छाती सहस्रों माथ
उठ गये नभ में सहस्रों हाथ





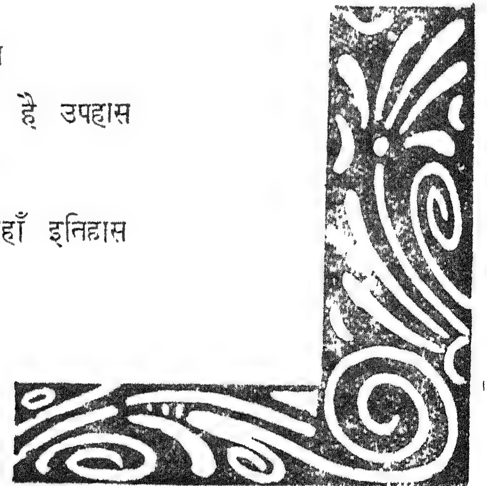
शान्त इस प्रतिरोध का प्रतिकार
बन्द होते गये सारे द्वार
और बन्द कपाट पर सिर टेक
ीर नभ उठती रही हुंकार

देश के बाहर ढकेल ढकेल
लगा चलने आग का कटु न्याय
एक ओर गरज उठी ललकार
और थी इस ओर केवल हाय

किस निराली वेदना में प्राण
हो रहा फिर दिवस का अवसान
एक होकर चाहते हैं त्राण
उठ रहा फिर से निशा का गान

हुआ फिर नारी का अपमान
लगा जीवन विधि में व्यवधान
हमारे परिवारों पर चोट
देश की संस्कृति पर संधान

व्याह की विधि ही बनी अमान्य
न्याय का कैसा है उपहास
यहाँ अपमानित अपना धर्म
झूठ बन गया यहाँ इतिहास



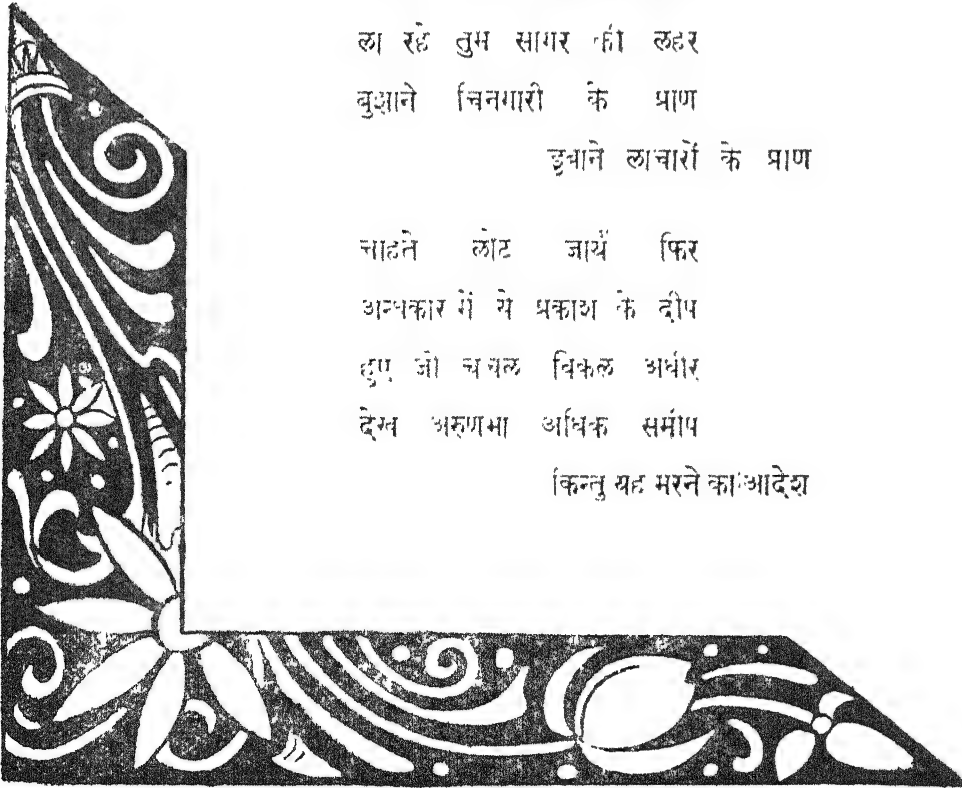
शान्त थी गोमुख सरल उदार
उठी करने इसका प्रतिकार
दिये लज्जा के बन्धन तोड़
लिये लपटों के वस्त्र सँवार
लाँघ कर लाचारी का देश



लाज क्या नारी पति के साथ
न पाये रहने का अधिकार
छिना जब नारी से घर की
गृहिणी कहलाने का अधिकार
धूल का धूसर ही अभिषेक

चाहते फूँक मिटाना आग
खोजना जो अपनी पहचान
ला रहे तुम सागर की लहर
बुझाने चिनगारी के प्राण
डुबाने लाचारों के प्राण

चाहते लौट जायें फिर
अन्धकार में ये प्रकाश के दीप
हुए जो चंचल विकल अधीर
देख अरुणभा अधिक समीप
किन्तु यह मरने का आदेश



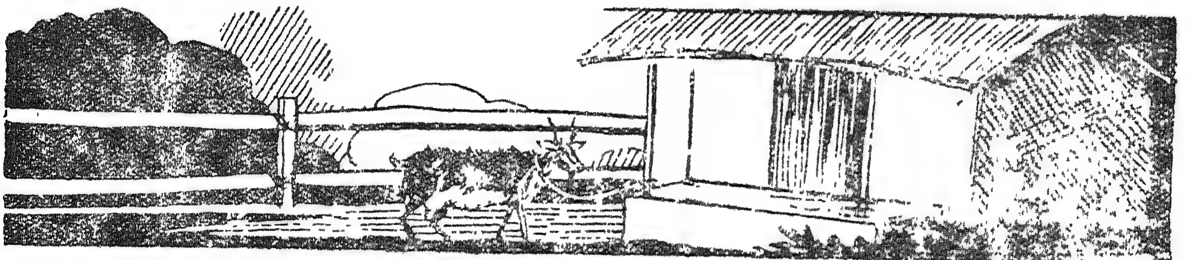
उठीं बिजलियाँ शक्ति रूपिणी
फटा गगन बन्धन ढीले
बढ़े राह में उन्नत सिर
नारी की शक्ति साथ में ले

याद है नारी का अपमान
प्रेम के बन्धन का अपमान
याद हैं द्रुपद सुता के केश
याद है अम्बा का वरदान

याद है सीता की हुंकार
एक नारी की क्षुब्ध पुकार
बह गया लंका का अभिमान
ढह गयी सत्ता की दीवार

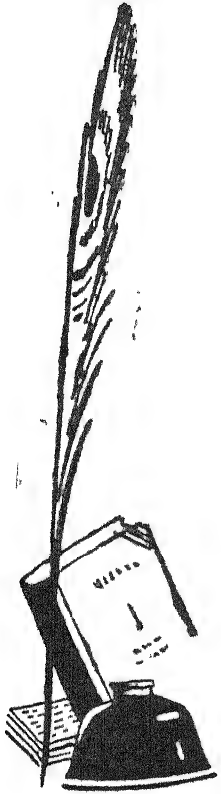
याद है सावित्री की राह
लाँघती घूर्णित मृत्यु अथाह
खटखटा मृत्यु देव के द्वार
उतर जो गयी कि प्रलय प्रवाह

शक्ति उठ चली
सिन्धु जल छहर छहर
गूँजती लहर लहर
क्षितिज है पुकारता
ठहर ठहर



उठ रहा प्रबल विनाश
चीखती दिशा हताश
है प्रकाश बुझ रहा
सिहर सिहर

भरी वायु पालों की छाती में
नाव बढ़ चली
शक्ति उठ चली

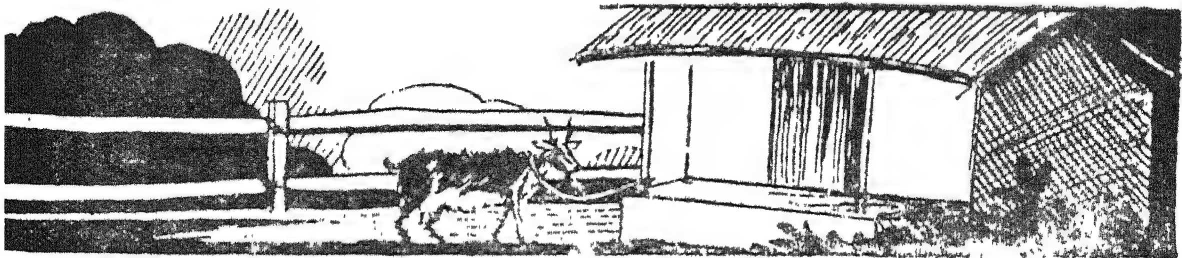




रोकती दिशा-दिशा
सामने गगन झुका
वायु मथ रही, रहे
बिखर बिखर

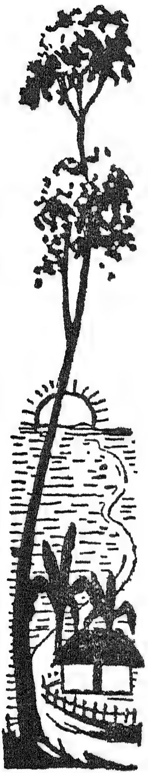
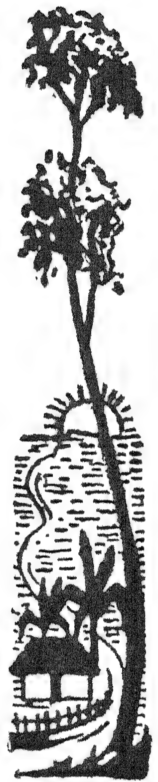
कष्ट का धुवाँ लिये
ज्वाल अश्रु की पिये
देव मेघ के खड़े
डगर डगर

उठी क्रान्ति मेघों की राहों में
बिजलियाँ हँसी
शक्ति उठ चली



न्यू कासिल की सोने की
खानों में उठी पुकार
उठो न हिन्दुस्तान, खड़ी
नारी है आकर द्वार

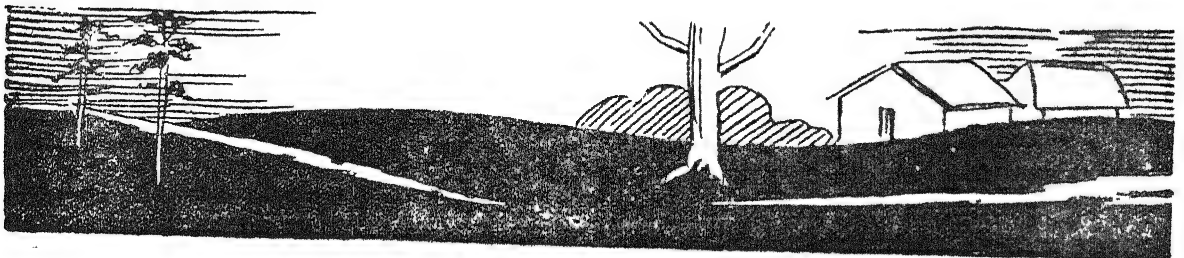
उठो द्रौपदी की करुणा पर
झुके खड़े ओ भीम
करो घोषणा नये पंथ की
भुजा उठा निस्सीम

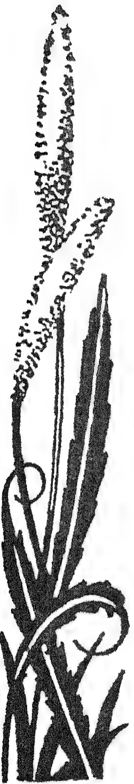
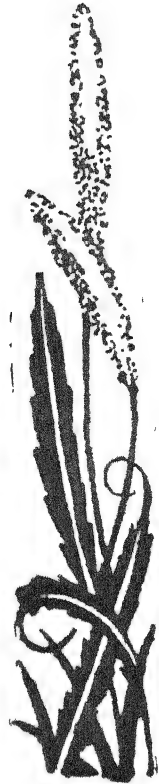
आज तुम्हारे द्वार खड़ी
आ अधिकारों की हूक
बोल बोल ओ दलित
जाति के हृदय युगों से मूक

आज फिर नारी ने दो बूँद आँसुओं की माँगी मनुहार
दिखाये द्रुपद सुता ने केश जानकी ने अंचल विस्तार

"मुझे दो खोयी मेरी लाज
खड़ी मैं जग की सुनी राह
और घेरे आता है मुझे नाश
का भीषण प्रलय प्रवाह



मुझे दो खोयी वह हुंकार
जिसे ले जाकर पथ के पार
खोल मैं सकूँ खून से रँगे
मरण के काले कुण्ठित द्वार'

फट पड़ छाती ओ मजलूमों की
दबती अकुलाती
उमड़ चल अरी सुप्त जवानी
लहर लहर इतराती

फेंको आज कुदाल फावड़े
लाचारी के बन्धन
छोड़ो मोह त्रस्त जीवन का
उमग पड़ो ओ जनजन

यह बिजली की कौंध और
इंगित व्याकुल नारी का
भभक जल उठा बन प्रकाश
अपमान दलित नारी का



एक जलन से जलीं दिशाएँ
फटा गगन लाचार
दूर खड़े भारत ने बन्धन में
ही ली हुंकार

उमड़े सिन्धु भग्न गर्वित तट
उखड़ चली दीवार
एक चोट से हिली नींव तक
सत्ता की मीनार

आज युग युग का संचित पुण्य
फँसा कंटक की तीखी राह
और ऊपर से रहा पुकार
क्रुद्ध झंझा का प्रलय प्रवाह

छिद गये फूलों के थे प्राण
मगर ले होठों पर मुस्कान
छेड़ दी प्रलय रागिनी बीच
मचलती निश्चय की नवतान



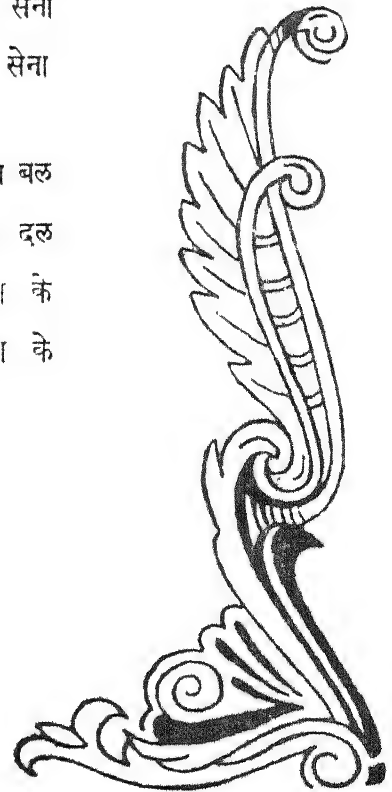


मृत्यु के काले पहिये घोर
रोक जूझती अकेली जान
भूल क्या सकती अब भी
अमर बन गयी बलियम्मा की आन

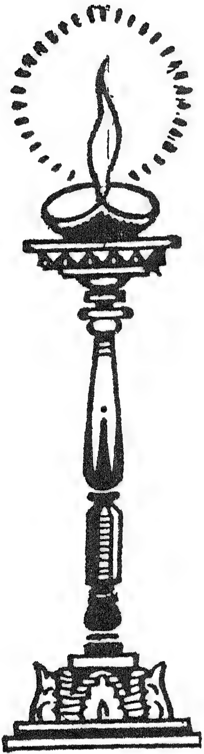
आन वह जिस पर बन्धन तोड़
राह पर उमड़ चले मजदूर
आन वह जिस पर छाती तान
गोलियों से जूझे मजदूर

फिर एक बार उमड़े अषाढ़ के बादल
बिछ गये दिशा के पत्र चरण पर विह्वल
फिर एक बार उठ चली उमड़ती सेना
मानव के अधिकारों की पावन सेना

फिर एक बार जागा दुनिया का जन बल
झुक गया सामने इठलाता पशु का दल
फट रहा गगन रोके न रुका सत्ता के
ढह गये गर्व के द्वार अचल सत्ता के







बढ़ चला अभियान जन जन का
मुक्त दिशि स्वच्छन्द मन,
मन्थर पवन
चले आते छोड़ सीमाएँ
चरण

उमड़ता था सिन्धु दिशि दिशि से
तोड़कर अवरोध बन्धन का
बढ़ चला अभियान जन जन का

टूट गिरती थी दिशा
लाचार बन
खुल गये फिर घिरे निशि
के घोर घन

बरसता था गगन अरुण फुहार
उमड़ता था गान मन मन का
बढ़ चला अभियान जन जन का

———





चतुर्थ सर्ग

[गांधी ने अपना मुँह भारत की ओर फेरा। बीच में क्षुब्ध हिन्द महासागर गरज रहा था।

अभागा हिन्द महासागर !

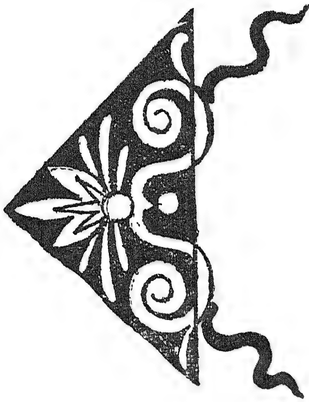
हाँ, अभागा हिन्द महासागर ही, जिसके चारों ओर पराधीन देशों की भूमि है; जिसके चारों ओर जनता के सिर झुके हैं और मानव लाचार है। कहाँ महासागर की अबाध हुंकार और कहाँ पराधीनता की दबी चीत्कार। यह तो सागर की लाचारी है कि उसे यहीं रहना है।

गांधी के भी सागर ऐसा एक हृदय है, लेकिन उससे भी विशाल, विश्व-भर की करुणा लिये उससे सहस्र गुना विकल। गांधी की वेदना तो सागर से भी बलवान है।]

है अहिर्निशि गरजता सागर हठीला
हो रहा प्रतिक्षण धरा का वक्ष गीला
क्षुब्ध है सुनसान वे सैकत किनारे
किन्तु सागर की लहर प्रतिपल पुकारे

पराधीन। देशों की धूमिल पराधीन बेलाएँ
सागरके उच्छल चुम्बनमें काँप सिहर झर जाएँ



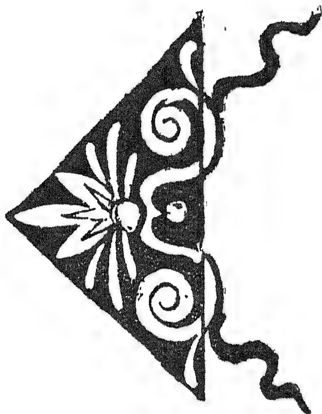


भारत की बन्दिनी भूमि करुणा की मूर्ति बिचारी
बर्मा जावा हिन्दएशिया द्वीपों की लाचारी
मेडागास्कर खड़ा जहाँ जनता के शीश झुके हैं
अफ्रीका में साँस ले रही जनता युग की हारी

वेदना - अवरुद्ध रोदन
बन्ध कम्पन, क्षुब्ध कण कण
वेदना की घुटन में
हुंकार भूला कोटि जन-मन

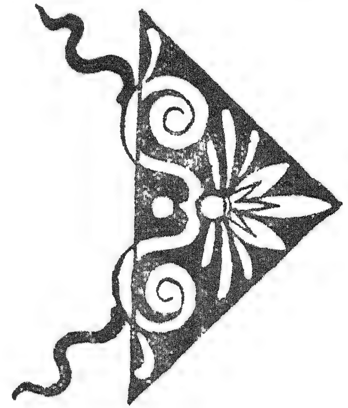
चीर क्षितिज लड़खड़ा रही जनता की आर्त पुकार
रह रह कर उठ जाती मरघट की सूनी सीत्कार
तट तट पर है लगा हुआ खण्डित शीशों का मेला
तेरे तट पर जनसत्ता की ढही पड़ी दीवार

सुनते चले जा रहे कब से यह अपमान कहानी
तुममें भरा जा रहा कब से कोटि नयन का पानी
भींग रही सिकता की बेला नित्य नवीन लहू से
किस युग का अभिशाप भोगते अम्भोनिधि अभिमानी



तुम काली के मन्दिर की देहली बने निरुपाय
जहाँ गिर रहा रक्त कट रहे शीशों के समुदाय
कितनी चीख। पुकार और फिर कितने जलते आँसू
इस करुणा के पार जा सको कैसे तुम असहाय

किसने बाँध दिया तुझको ला पराधीन बेला में
तेरे लहरों के संदेश के दीप बिखर बुझ जाएँ
तेरी ध्वनि न समझ पायेगा लाचारों का आलम
ओ हुंकारों के प्रतीक मजलूमों की दुनिया में



तट ये खड़े पुकार रहे हैं करुणा के अंचल में
उठ उठ पड़ रे सागर के प्रण विप्लव के इस पल में
बढ़े तटों के हाथ सौंप दो विप्लव की पहचान
स्वयं उमड़, फिर बिखर, उमड़ फिर, गरज गरज पदतल में

गरजो.......
गरजो सागर गरजो
उमड़ो मन्थन उमड़ो
गूंजो क्रन्दन गूँजो
जागो जन जन जागो

खड़े सागर तीर बापू मौन चिन्तित शान्त
चरण पर सागर रहा रो वेदना में श्रान्त

पीछे फटते मेघ किन्तु
आगे उमड़ते अछोर
कलियुगों का पंथहीन
मानव जाए किस ओर

पागल वायु दे रहा दिशि-दिशि रुदन से भरी फेरी
नाचे सागर की पुकार वेदना उतारे गेरी



अरे यह कितना गहरा क्षोभ
मचलती लहरों का यह क्षोभ
गहन तल से उठ आता घोर
उछलती लहरों का यह क्षोभ

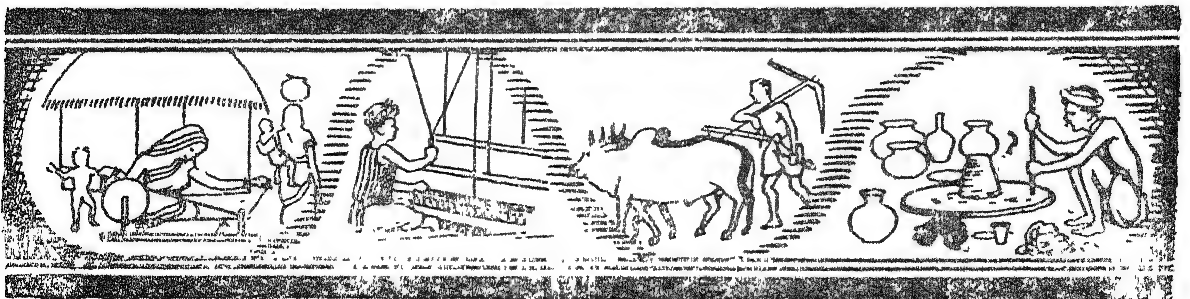
मगर सागर का यह विस्तार
वेदना की इतनी हुंकार
फैल छितरा जाती प्रतिबार
गगन के पथ के भी उस पार

किन्तु तुम जग के मानव प्राण
वेदना सागर से बलवान
तुम्हें भी सागर तट से उठे
बुलाते करुणा-पूरित गान

जो कि जा क्षितिज लहरियाँ चीर
गूँजते दिशा दिशा के तीर
जिन्हें सुन सागर होता क्षुब्ध
गगन की लहरें क्षुब्ध अधीर

उसी करुणा की दैन्य पुकार
समेटे हृद-तल में हुंकार
खड़े तुम हिम की शीतल छाँह
बने, उन्मुक्त युग के तट-द्वार

वेदना तुमने पीली नयन-राह
से देख एक क्षण बीच
चेतना की भूलुण्ठित मूर्त्ति
बिठायी युग पलकों में खींच



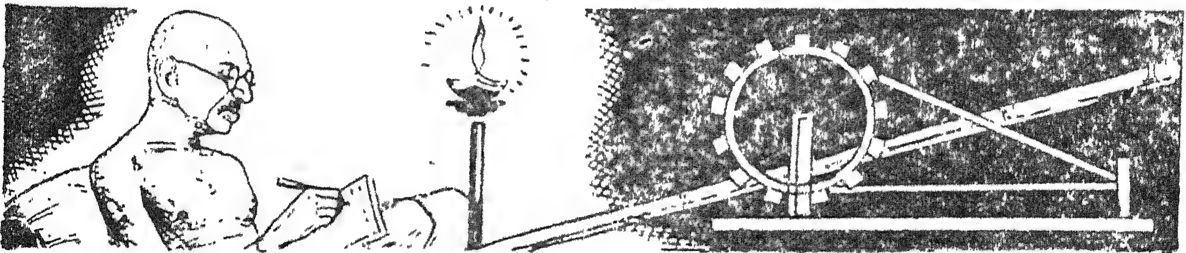
पंचम सर्ग

[वेदना के देवता ने भारत की भूमि पर पैर रक्खा मगर स्वागत में शंखध्वनि न मिली, जनता का रुदन ही मिला। देश का दिया बुझा था, बत्ती काली पड़ी थी धुएँ से घिरी। गोरों के सामने जो छातियाँ अड़ी थीं, उनमें छेद हो गये थे। जनता का मनोबल ढह गया था। गांधी तो पराधीन दलित जाति की ओर से—उसके कष्ट, उसके अपमान की ओर से खड़े हुए हैं--यही विश्वास था पुराने बलिदानियों को। वे कब्र में पड़े पुकार उठे—हमें न्याय मिलना चाहिये जनता के वकील! विश्व के न्यायालय के द्वार पर बापू को आवाज उठाने के लिए देश के कटे सिरों ने कहा, प्लासी ने कहा बक्सर ने और सन् ५७ के शहीद बहादुरशाह ने कहा।

मांग तो उठानी थी किन्तु जनता का तो सिर ही नहीं उठ रहा था। बापू अपनी वंशी की तान उठाते बढ़ने लगे। उन्हें देश के कण कण को पानी में डुबा कर धूप में सुखाकर और आग में तपा कर पहले वज्र जो बनाना था।]

शंख न बजे उठी थर्राती रोदन की आवाज
फूल न हाथ शहीदों के सिर की अंजलि ही भरती
और अर्घ्य के स्थान नयन की बूँद रक्त की धारा
बापू आज देश की भूमि तुम्हारा स्वागत करती

देख रहे तुम खड़े शृंग से
बुझी देश की बाती
खण्डहरों से फटी नाट से
फटी देश की छाती



सूखे सरिता तीर, धधकते
ऊसर, सूने खेत
भरी दिशाओं की आँखों में
उड़ मरुओं की रेत

ढहे दुर्ग, टूटीं तलवारें
टूट गिरीं दीवारें
झुकी तोप बुर्जें टूटीं
गिर चूर हुईं मीनारें

खण्डहरों की भयद छाँह रोती काली दीवार
केवल एक पुकार हार की—हार गयी मैं हार

लाद बोझ प्राचीन, बुझा
सन्तोष, झुकी लाचारी
रेंग रही जनता तमसा-
घाटी में कब की हारी

साँय साँय सन्नाटा मरघट
का पथ पथ पर छाया
खींच रही है साँस कष्ट से
मानव की यह काया



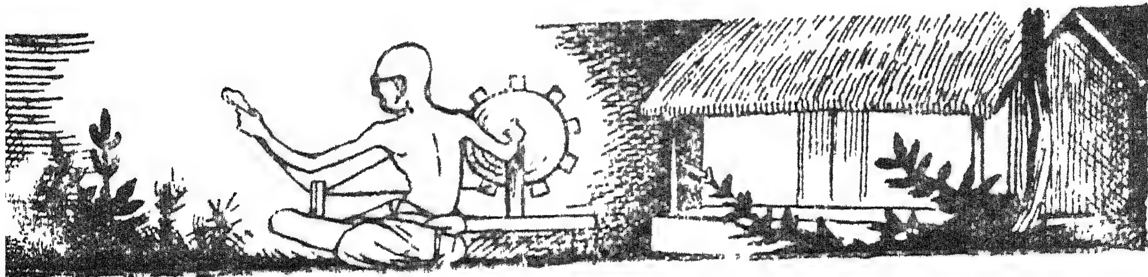
यह पीड़ा का तीर्थ
वेदना की पूजा का लोक
दुख की अँधियारी में
झिलमिल आँसू का आलोक

यहाँ चाँद सूरज को घेर
पुतलियाँ नाच रहीं पीड़ा की
यह क्रन्दन की भूमि रुदन की
लाचारी मिश्रित क्रीड़ा की

यहाँ सिसकियों में लाचारी
गायन में बहकावा मन का
सो रहने का मोह दबाता
गला उमड़ उठते रोदन का

यहाँ अग्नि के ऊपर
हिम की रुद्ध मौनता से समझौता
यहाँ प्रलय के बीच
रूढ़ियों की नीरवता से समझौता

ऐसा यह हत देश
हिमांचल के पद पर निरुपाय
चाह रहा आँखों में
जल ले तुमसे अपना न्याय



हाथ बढ़ा ले रक्त भरे सिर घायल व्याकुल प्राण
माँग रहा है न्याय खड़ा यह आतुर हिन्दुस्तान

पड़े तुम्हारे चरण भूमि पर, जान हटाकर झाड़
जाग गयीं हैं घाव सरीखी कब्रें छाती फाड़

न्याय माँगता तुमसे खड़ा
सिराज कटा सिर कर में
न्याय माँगती कासिम की
है लाश—पुकार अधर में

'न्याय न्याय' है चीख रही
दो टूक हुई तलवार
देखो टीपू खड़ा हुआ
उठ श्रीपट्टन के द्वार

सुनो आ रही वीर सिंह
की घायल यह हुंकार
हैदर उठ आया है बाहर
खोल कब्र के द्वार

झुके शीश तलवारें टेक
जीने दो असहाय
माँग रहा बेल्लोर अड़ा
जग पथ पर अपना न्याय



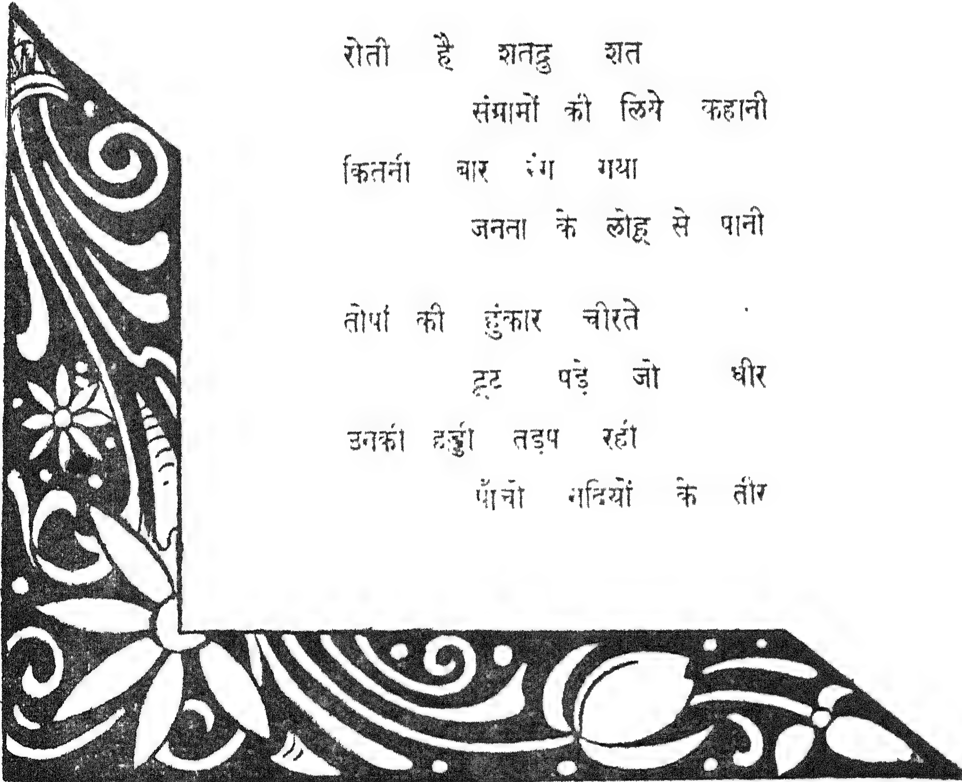
माँग रही है न्याय भूमि
　　　ले खून से भरी छाती
प्यासी है बेचैन भूमि
　　　अवसर की है अकुलानी

माँग रही हैं न्याय घेरिया
　　　की सूनी चट्टानें
माँग रहे हैं न्याय
　　　दुर्ग दक्षिण के ढहे पुराने

खैबर खड़ा बिछाये छाती
　　　माँग रहा है न्याय
माँग रही है न्याय सिन्ध
　　　की प्रजा बनी असहाय

रोती है शतद्रु शत
　　　संग्रामों की लिये कहानी
कितनी बार रंग गया
　　　जनता के लोहू से पानी

तोपों की हुंकार चीरते
　　　टूट पड़े जो वीर
उनकी हड्डी तड़प रही
　　　पाँचों नदियों के तीर



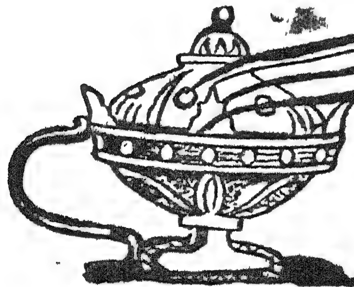
एक बार सत्तावन में
चमकी तलवार पुरानी
फिर से तर्पण हुआ रक्त का
जूझ पड़े बलिदानी

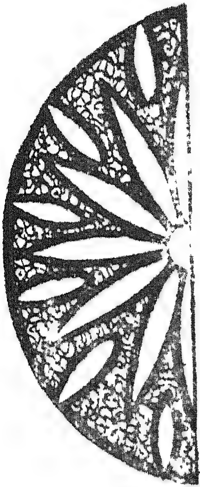
परवश की हुंकार सिंह
की घायल थी चीत्कार
जिसने हिला दिये पल भर
को सत्ता के गुरु द्वार

बना हार को जीत एक क्षण चमक रात में।काली
बुझी धुयें में घिरी प्राण के दीपों की दीवाली

फिर झण्डे झुक गये
छाँह में रो समाधियाँ सोई
कहीं समाधि - समूहों में
झाँसी की रानी खोई

यही कहीं खो गया।
अरे रणधीर तातिया वीर
बुला रहा रोकर नाना
को घायल गंगा तीर

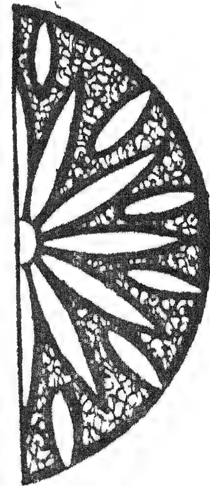




एक एक टेकरी रंग
गयी मनचीते बलिदान
बिखर गये विन्ध्या के
पद पर फूलों से शत प्राण

सुनो आ रही चीर क्षितिज
से व्याकुल एक कराह
अरे पुकार रहा बर्मा से
सुप्त बहादुर शाह

तम में लिप्त कब्र, पर
उन्मन सी करवटें बदलती
काली भूखी नींद, स्वप्न
की छायायें सिर धुनती



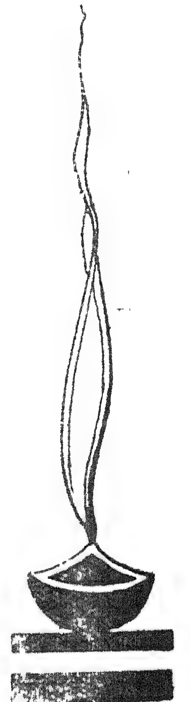
"सिंहासन दिल्ली का, फिर
विद्रोह, ज्वलित हुंकार
टूट गिरी उस शाम
कहीं गोले से लद दीवार



दिल्ली का पथ, खून,
खून की फाग, रक्त का सागर
फिर उमड़ा नभ चीर
कटे सिर वालों का वह सागर"

'आह'–कब्र ने करवट ली--
"सिर कटे हुओं की सेना
चली तख्त लन्दन को तेग
घुमाती वह जन-सेना–"

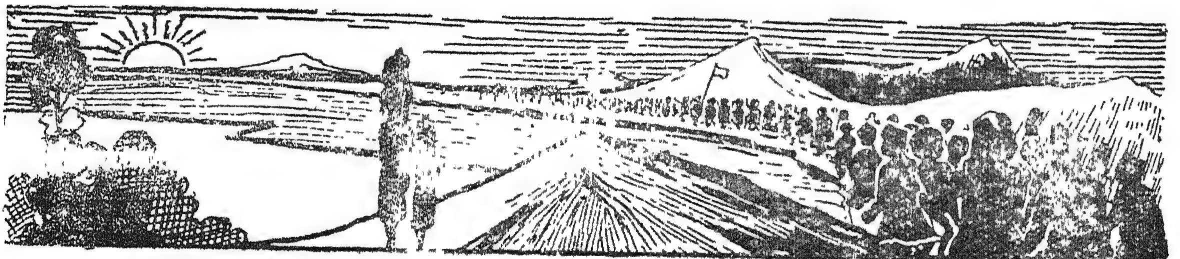




'अरे मुझे भी लेलो' सपना
भंग, उजाला फिर था
टपका सिर पर रक्त शाह
के बेटों के दो सिरका

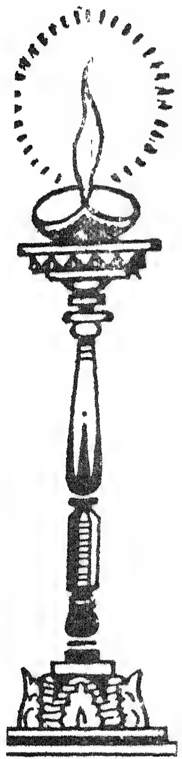
गली गली में युद्ध
टूटती जनबल की दीवार
अब भी हृदय हिला
देती है दिल्ली की चीत्कार

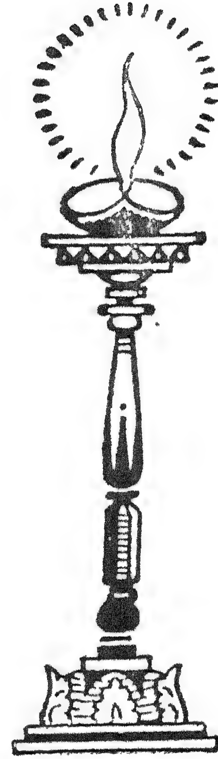
बाँध छातियों का, टकराता
दुर्मद अग्नि प्रवाह
जहाँ अन्त तक रोकी
लाशों ने दुश्मन की राह



अरे बख्तखाँ तुम
गरीब लाचार फिरे हत आश
देख न पाये अर्ध रात में
हुआ नवल प्रभात

ओ छाया के सिंहो
भू-पर पड़े बने लाचार
सिर कटने पर भी सर पर
घूमती रही तलवार

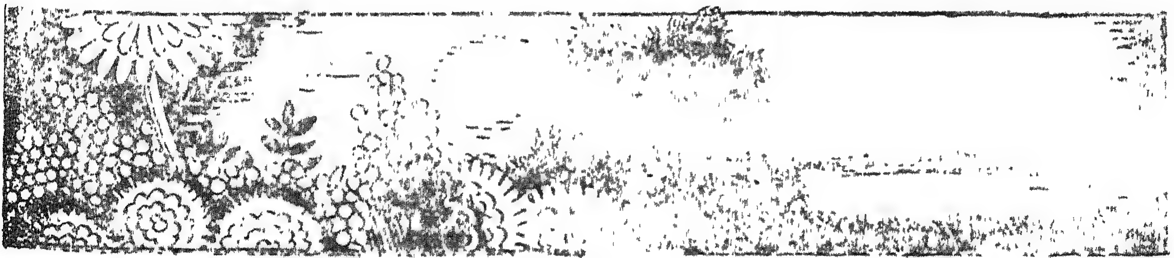




तोपों के मुंह पर
बाँधे जनता ने आकुल प्राण
मिट्टी में सो गया पुत्र
मिट्टी की छाती तान

तोपों की हुंकार मिट
गये हँसकर वे बलिदानी
कूकों का विद्रोह याद
कूकों की करुण कहानी

और पुकार रहा है आज
गूंजे है मैदान
देखो कूकों की छाती से
उठा एक तूफान



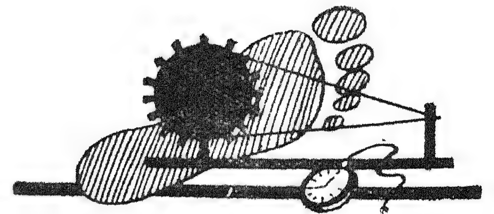
इतनी छिदीं छातियाँ
झूले इतने सिर लाचार
पर बन्द के बन्द ही है
ये घोर तमस के द्वार

इतने सिर टकराये
काली बलि की देहलियों पर
पर न वायु आई प्रातः
की मुरझायी कलियों पर

अरे लाल मर गये किन्तु
नव प्रात न देखा
खींच रह गये काल डगर
पर काली रेखा



इतना रक्त उलीचा जिससे
रात धो उठी काली
पर न रक्त के रंग में
रंग कर उठी उषा मतवाली



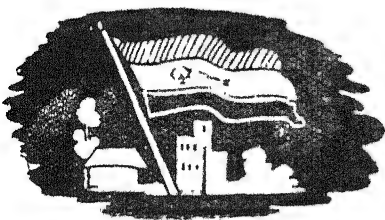
दीपक वे बुझ गये
किन्तु जलता है दीपक राग
कैसे यह बुझ जाय
धधकती आजादी की आग

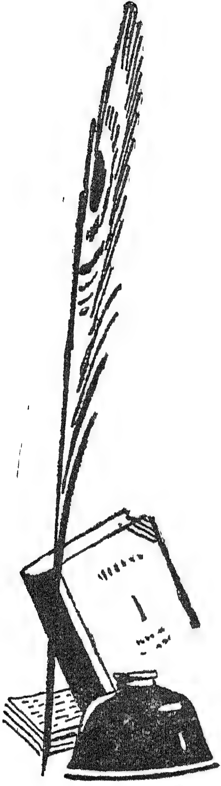
किन्तु धधकता ज्वाला-मुख
निज सत्ता भूल बिचारा
पड़ा पदों पर दुनिया के
अपमानित सबसे हारा

कैसे जनता भूल गयी कन्धे पर सिर की सत्ता
कैसे भूल गयी अपनी प्राचीन अमोघ महत्ता
कैसे सूख गये गिर गिर नयनों के खारे पानी
है ललकार उठो तुमको सारी अपमान कहानी

एक फूँक में पैर उखड़
जाते जिस हारे जन के
एक आग की कणिका
भस्म बना दे स्वप्न नयन के



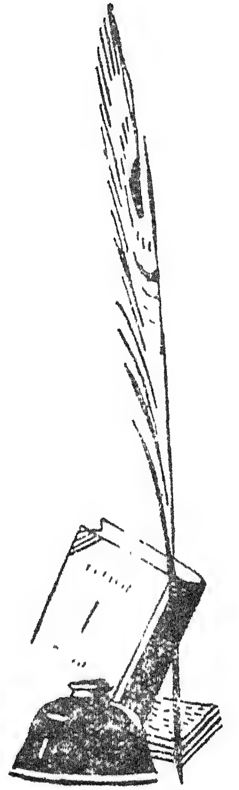


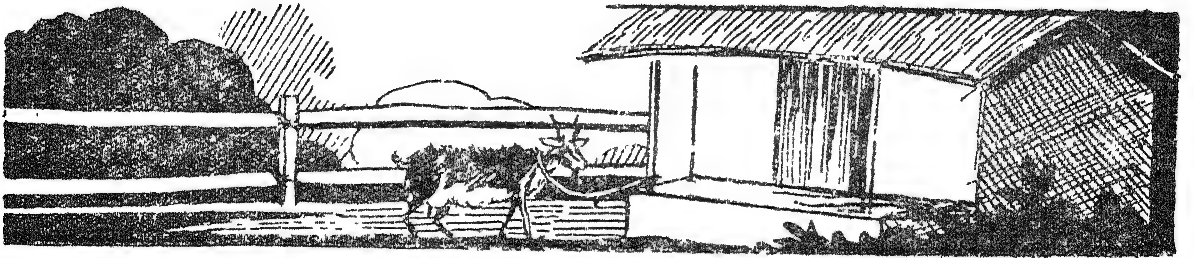


ऐसी छोटी जान ढहा
भू पर ऐसा सम्मान
खड़ा हो सकेगा बापू
क्या पकड़ तुम्हारी आन

डुबा सिन्धु में तपा आग में
सुखा धूप में कण कण
रच पाओगे इनसे क्या
तुम बज्र बन गये जन जन

———



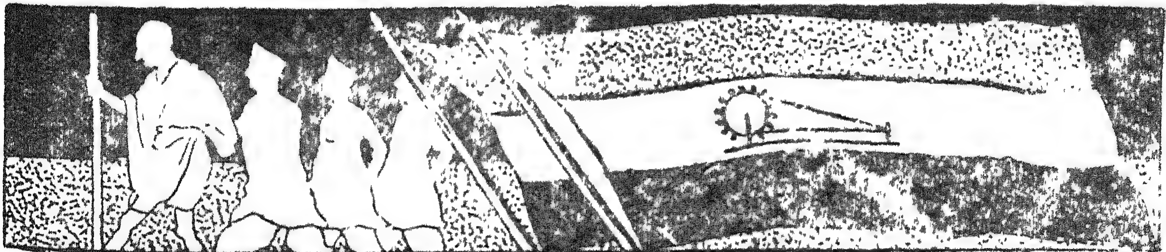


छठवाँ सर्ग

[न्याय देने के लिए, जनता की छाती में बल देने के लिए गान्धी ने कदम बढ़ाये। वीरमपुर से चम्पारन, चम्पारन से अहमदाबाद के मजदूरों तक तब वहाँ से खेड़ा में इनके चरण घूमे। चरण घूमते थे और जनता उठती चलती थी। फिर तो जनता इतनी अडिग हुई कि आज तक का प्रलय भी उसका पैर जमीन से हटा नहीं सका।

इसी अनवरत उठते प्रलय का एक छोटा संस्करण खेड़ा की भयंकर बाढ़ में उबल पड़ा था जिसमें कई नगरों तथा गाँवों के साथ सरकारी अधिकार भी बह गया किन्तु जनता के पैर वहाँ एक दम न उखड़े। यद्यपि घटना ठीक उसी क्रम में नहीं आती पर प्रलय के पूर्वाभास के रूप में उसका स्मरण यहाँ आवश्यक था। जनता ने यहाँ एक बात सीखी: अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करना ही मानवता है, क्योंकि अन्यायी मानवता का शत्रु होता है।]

चल पड़े फिर अगम पथ पर चरण दो अश्रान्त
महावीणा के मुखर फिर हुए तार प्रशान्त
गरज पीछे सिन्धु देता चल रहा था ताल
ऐंठता सा घूम जाता पंथ जैसे व्याल
और नभ के छोर उमड़े मेघ महदाकार
चीखती सी रही क्षिति के पार एक पुकार



मंजिल इन्हें पुकार रही
है पथ ने छाती खोली
आज वायु के स्वर में झंकृत
चलो चलो की बोली

आगे चलते चरण चूमने
को उत्सुक पथ-रेखा
खींच चले धूमिल धरती
पर निर्माणों की लेखा

पथ के दोनों ओर लगी है
भीड़ प्रताड़ित जनकी
"सुनो हमारी सुनो कहानी
सुनो क्षुब्ध जन मन की"

एक बार देखा वीरमपुर
में निश्चय भर मन में
जली हठीली शान जल गया
मान एक ही क्षण में

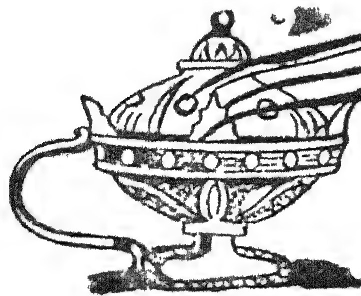
सत्ता का हठ सिहरा फिर
बेचैन हुआ फिर विह्वल
फिर लड़ने को क्रुद्ध गरज
कर उठा सिंह सा घायल



पर जितना ही एक ओर
गरजन तड़पन का आलम
उतना ही उन्मेष शान्ति
का उतना ही था खमदम

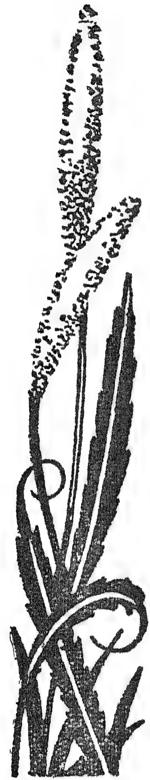
एक ओर शापित मानव
के प्राण विवश अनजाने
और दूसरी ओर कठिन
रावण ने शर थे ताने
इसी समय आ आगे
पीछे हटा दलित मानव को
उठा भुजा-प्राचीर वहीं
ललकारा था दानव को

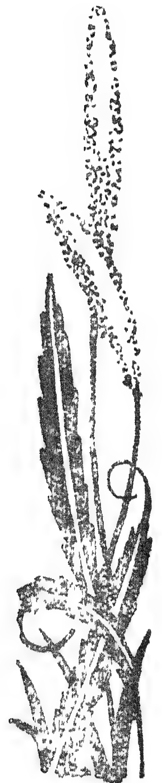
'आज शस्त्र के साथ युद्ध
मानव का, मानव मन का
बढ़ो विजय की राह गिर
रहा खून जागरित जन का
झिझक तभी तक जब तक
उठी न मानव की मुस्कान
और विजय खिल गई
फूल सी उठे छलक जय गान



और झुके तब तक जब
तक न उठा छाती में सागर
और रुके तब तक जब तक
न चले कंटक पर पगधर

रुदन तभी तक, लाचारी
जब तक हम भरें कराहें
और बन्धनों की सत्ता तब
तक जब तक हम चाहें





एक बार सिर ऊँचा, छाती
तान वाण हम छोड़ें
हुंकारों के, भभक जल उठे
दिशा, बन्ध नभ तोड़ें,

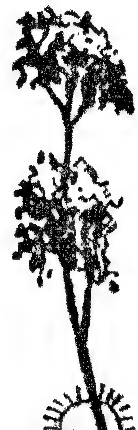
फिर गिरमिट की प्रथा मिटी धक्के का एक इशारा
अब न पराधीनों का बन्धन बँधे न जीवनहारा

युग का आँसू तोड़ बन्ध
फिर उमड़ चला आँखों से
एक विवशता झड़ी फड़कती
युग की युग पाँखों से

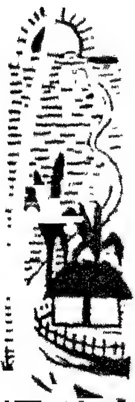


उठी उमड़ फिर नभ के
कोने में मेघ-दल की रेखा
सबने जनता को उठ
पढ़ते चमगाग्न में देखा

ये जनता के प्राण
श्राप से बने अभागे पत्थर
माथे पर ले दाग नील का
पड़े धूलिमय पथ पर

उस पथ पर जिस पर न
कभी भी जगी अनकही आशा
कौन समझ पाता अनचाहा
पत्थर की यह भाषा




मौन अहिल्या युग से
लेकर काली एक निशानी
पत्थर में सिमटी बैठी
मुरझायी एक कहानी

जो राम के चरण धार
गयी जो पथरायी पलकें
ओठों पर रोदन की लहरें
काँपें, सिहरें, छलकें



उस दिन भी पत्थर बन
गये हृदय में गूँजी आशा
जड़ बन गये हृदय ने
जानी स्पन्दन की परिभाषा
और फिर चली उमड़ भीड़
ले साथ उमड़ता पानी
निकल हृदय से कुहरे सी
छा गयी दुखान्त कहानी

'यह देखो ये दाग अरे
यह चोट, अरे यह देखो
एक शरीर छिदा घावों से,
रुद्ध प्राण - तन देखो
मुझे ले चलो गाधी ही
के पास ले चलो मुझको
अरे न रोको कहने दो
जो कुछ कहता हूं मुझको
क्या कहते मै अधिक कह
गया अभी रुका सब मन में
अरे सहा जीवन भर
कैसे कह दूँ छोटे क्षण में



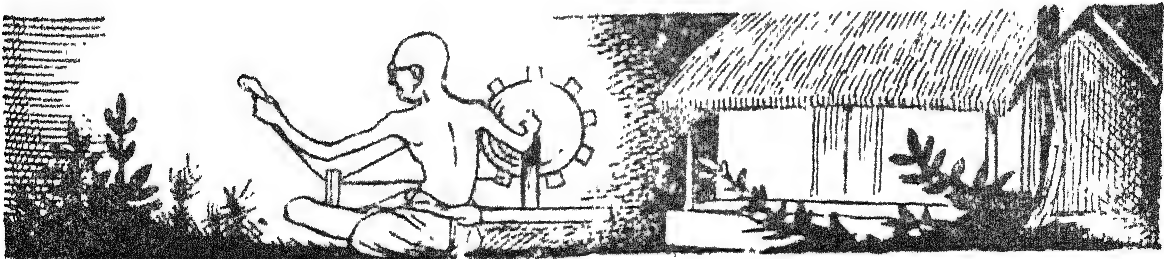
दो आँखों में कैसे
भर मैं सकूँ बाढ़ का पानी
एक निमिष में कैसे कह
दूँ यह अपमान कहानी

अरे घिरी कितनी गहरी
तम - पूर्ण भयानक रातें
और कालिमा मढ़ी
प्राण लेने की काली घातें

कैसे इनकी गहन कालिमा
कलुष भयानक सारा
प्रकट हो सके अह
बनकर चूर हुई ओस के द्वारा

कांप रही है ओस बह रही नयनों से फरियाद
जिनके पीछे घुमड़ रही दंशन की तीखी याद

और शीश पर काला
नीला दाग लगा ही रहता
वह अपमानों का कष्टों
की कथा कहा ही करता







खिंची चीर गंभीर प्राण में
दीप्त कष्ट की रेखा
जिसकी क्षणिक किन्तु
स्थिर ज्वाला में तुमने था देखा

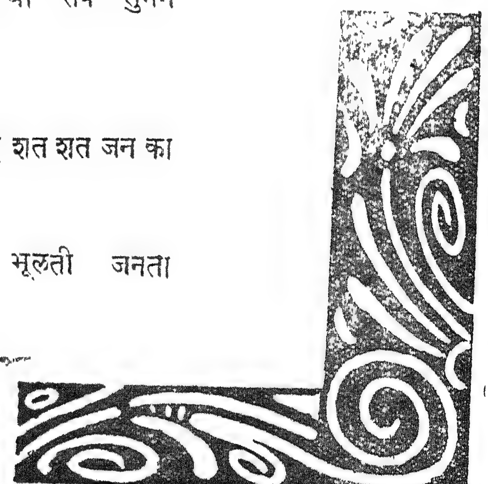
झुकी जाति का उठा मनोबल
सुना एक आवाहन
उठे भूमि पर रेंग रहे
चुपचाप जी रहे जन जन

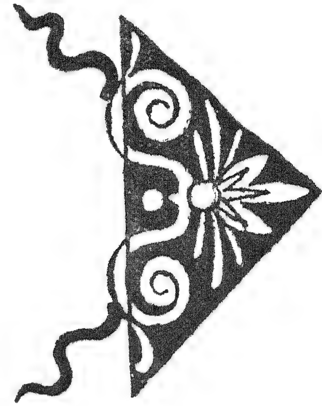
और धुल गया दाग नील
का चढ़ा एक ही पानी
जनता की यह जीत
बनी विजयों की अमर निशानी

टूट रहे अहमदाबाद में
जनता के साहस ने
विकल पुकारा, कर उपवास
भित्ति दी थी तब तुमने



यह अद्भुत् उपवास जो कि
प्रतिनिधि है शत शत जन का
जिसकी छाया में अपनी
ही भूख भूलती जनता





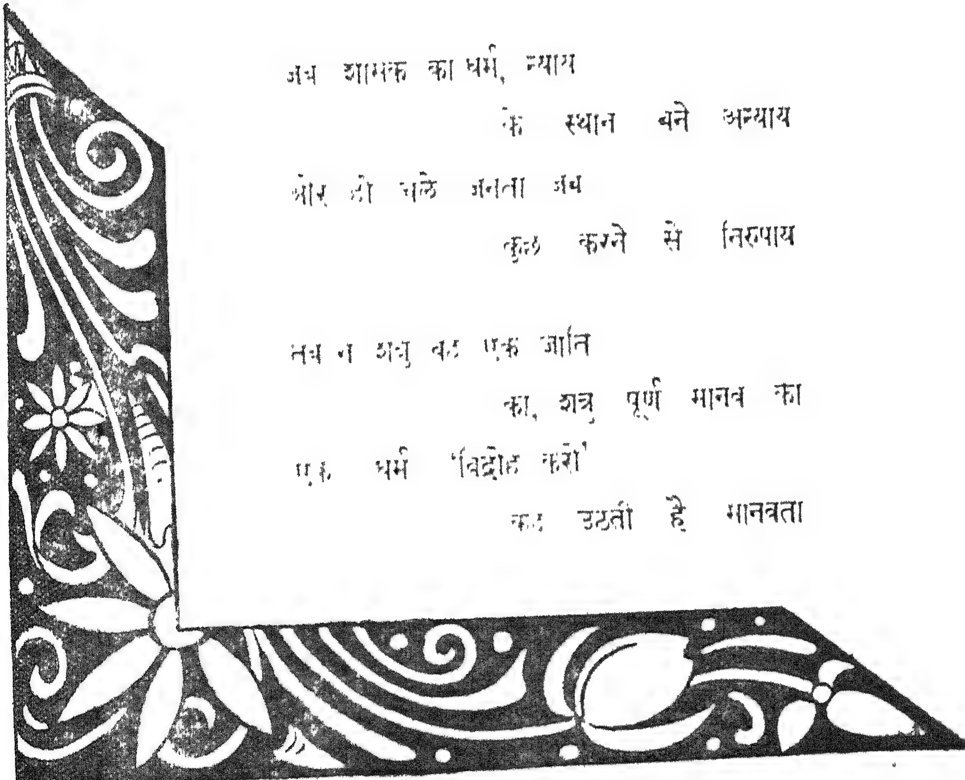
एक एक क्षण अनशन का
जग चली उखड़ती सत्ता
जाती बाजी बची
बचा जनता की अजर महत्ता

एक तुम्हारी ज्वाल—ज्वलित
शत प्राणों का आलोक
एक तुम्हारी साँस बन
गया साँसों का ही लोक

फिर सेवा में उठे दलित-
जन एक हो गये क्षण में
अत्याचारों का विरोध
आवश्यक है जीवन में

जब शासक का धर्म, न्याय
के स्थान बने अन्याय
और हो चले जनता जब
कुछ करने से निरुपाय

तब न शत्रु वह एक जाति
का, शत्रु पूर्ण मानव का
एक धर्म 'विद्रोह करो'
कह उठती है मानवता



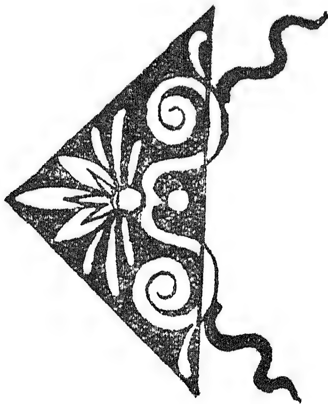


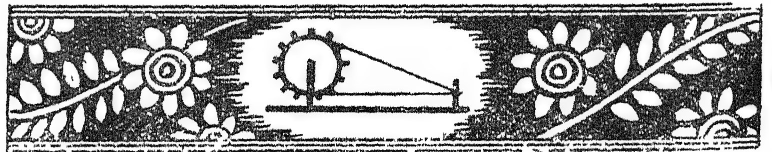
एक साथ हुंकार उठी
उठ पड़ने का अभियान
खेड़ा का वह समर
एक हो उठने का अभिमान

इन प्रतिरोधों में मिट्टी
का तन बनता इस्पात
जिसे डिगा न सकेंगे
झंझा बिजली के आघात

फिर खेड़ा में उमड़ उबलती
वृष्टि और झंझा में
उठे लौह के वीर प्रलय
दुर्मद छाती पर थामे

उन कुछ रात दिनों की
झंझायें वर्षा अपरूप
ले बैठीं फिर एक प्रलय
की धारा का कटु रूप





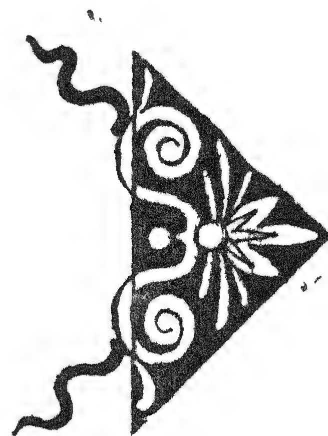


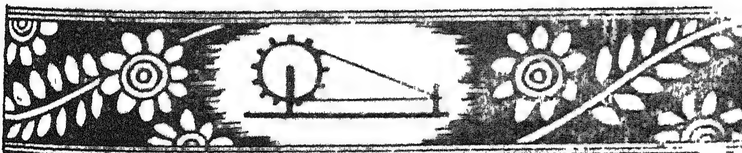
और नित्य ही भारत की
सन्तानों ने उठ बढ़ कर
झेला उन्हें भला अपने को
अपनी दृढ़ छाती पर

जहाँ राज्यसत्ता की काली
दीवारें ढह जातीं
जहाँ क्षुब्ध सरितायें
भूखी धारायें भर लातीं

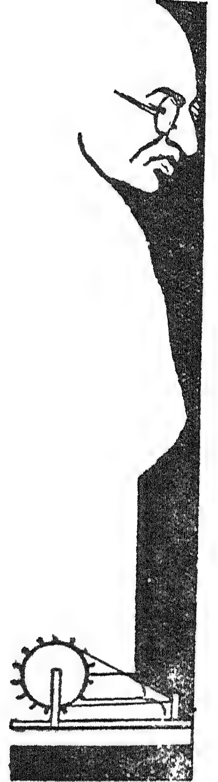
और तूफान बहा ले जाता
नगर नगर गाँवों को
कहीं न मिलती भूमि
उखड़े मानव के पाँवों को

वहाँ जमा विश्वासों की
भूपर अपना दृढ़ निश्चय
खड़े पटेल लिए लोहे के
वीर पूर्ण हो निर्भय





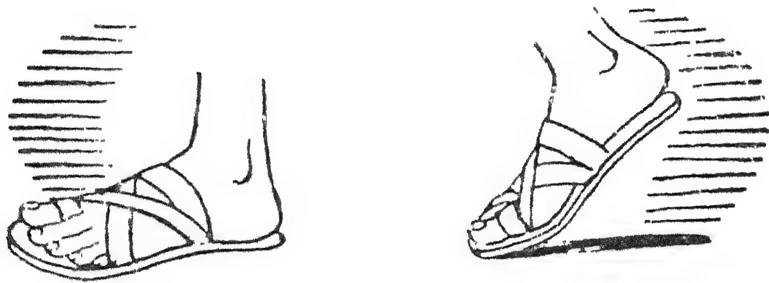




चारों ओर उमड़ते जल में
उस दिन जो पग स्थिर थे
वे न उखड़ फिर सके
कहीं चाहे कितने घन घिरते

यदि वर्षा भी सत्य, सत्य है
प्रलय, सत्य बादल ये
तो उनसे कम नहीं
सत्य छाती ताने मानव ये



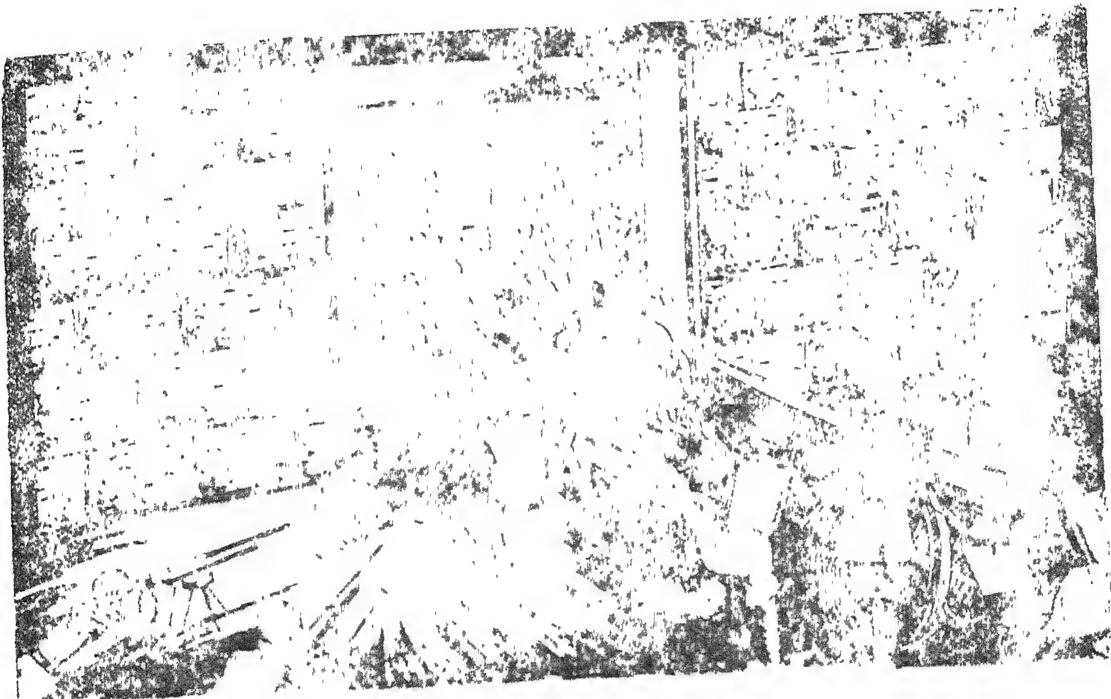


नानृतं जयति सत्यं, माभैः

घिरे धुएं के बीच अग्नि की
प्रथम लपट तुमको प्रणाम है

मुक्त होने के प्रथम जनकाव्य की
राष्ट्र के प्रतिरोध की, यह पीठिका
गोलियों में ध्वनित मंगलगान है
रक्त से ही लिखी जिसकी भूमिका

हाथ जोड़े नयन अपलक
जगा मन में स्नेह दीपक
चरण तल पर प्रार्थना रत हुए शत् शत् प्रान
नये जग में खोलता है नयन हिन्दुस्तान



सातवाँ सर्ग

[illegible] कदम जनता में असंतोष भरते चल रहे थे किन्तु यहाँ तक आकर जनता के विश्वासों को इतनी गहरी ठोकर लगी कि उसे प्रतिरोध के अतिरिक्त अपनी सम्मान रक्षा का कोई अन्य साधन ही नहीं सूझा। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत जिस जनता ने पूर्ण अधिकार पाने की कल्पना लेकर ही महायुद्ध में खून का सौदा किया था उसे मिला 'रौलट-एक्ट'।

'मांगी थी रोटी मिला पत्थर' बापू ने कहा। 'खिलाफत' की बात लेकर धर्मभूमि पर होने वाले अत्याचार की याद लेकर मुसलमानों ने भी कदम से कदम मिलाये। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक सारा भारत एक मनुष्य सा बन गया। फिर युग-निर्माता जन[illegible] का अभियान आन्दोलनों में मुखरित हुआ। हिन्दुस्तान में पहली दफा एक साथ चालीस कोटि जनता ने हुंकार भरी।

मिलो मिलो !

ओ लहराते सागरो

हहराते

चट्टानों पर चूर हो

छितराते

व्यंग कर रही चट्टाने

राह रोके

क्यों न मिल अरे बिजलियाँ

घहराते

जिन्दगी के ही लिए

बस राह पाने के लिए

तोड़ बन्धन, बढ़ा बाहें

भार फेंक मिलो मिलो

मिलो मिलो

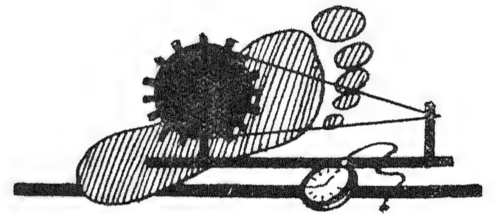


ओ झुक जाने वाली शीशावलियो

नहीं दृष्टि में आती क्या बरबादी !

व्यंग कर रहा है इतिहास तुम्हारा

क्यों न चरण ध्वनि में बजती आजादी



घोर एक पीली छाया
का पीलापन फैलाता
बढ़ा आँधियों का दल
धीरे धीरे चलता आता

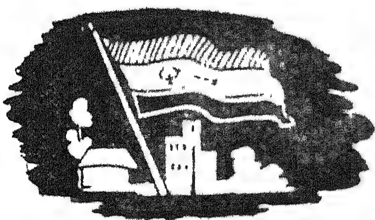
शान्त खड़े रह गये वृक्ष
डर से ठिठुरे सब फूल
स्तब्ध हो गयीं चंचल लहरें
मौन सिसकते कूल

घासों की फुनगी के
पल्लव धीरे धीरे सिहरे
देख क्षितिज से उठते
बादल काले काले गहरे

घोर कालिमा उठी
चली फिर पीली पीली धूल
और हँसी में झरते चलते
शत शत विद्युत् फूल

फिर नभ से बरसा अंजन
लिप काली हुई दिशायें
उतरा व्योम से तम बिखे-
रती काली मौन निशायें





पास प्राण के अश्रुत देश
तक खिंची रात की रेखा
जैसे किसी गाँव पर
संध्या में धूयें की रेखा

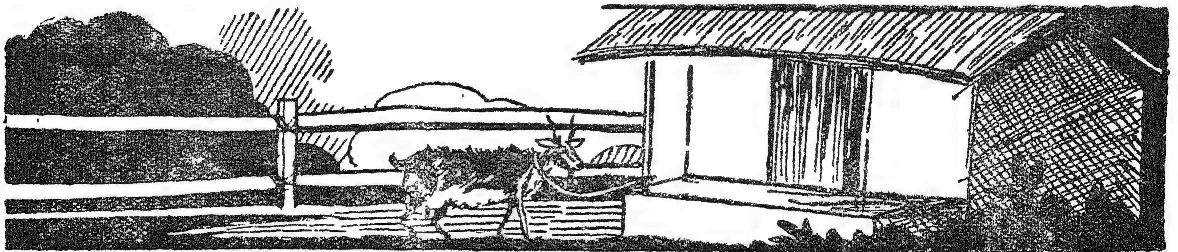
तुम्हें घेर लेने को उत्सुक
ये तमिस्र के बन्धन
तड़प उठो हे कण प्रकाश
के तोड़ निशा के बन्धन




उस अस्तित्व लुप्त होने की
भयद घड़ी में काली
एक साथ जल उठी
बुझे दो प्राणों की दीवाली

दो हाथों ने आश्रय चाहा
दो आँखों में ममता
चार चरण हो उठे हजारों
गति का वेग न थमता

काली सूनी रात मिले
दो पंछी कबके बिछुड़े
बजे एक ही संग हृदय
दो, नीड़ बस गये उजड़े



वीणा के औ इकतारे के
कब के टूटे तार
पुनः बज उठे एक राग
में उठी नयी झंकार

कैसी मधुमय घड़ी और
कैसा उन्मद उत्साह
जब कि गरजते मिले
उछलते बिछुड़े हुए प्रवाह





और गले मिलती लहरों
पर छायी रजनी काली
तार तार हो गयी, नाचती
अविरल नवल प्रभाली

चले दीपकों के दल आगे
जलते झिलमिल दीप
मिटा विभेद, लगी लगने
नभ गंगा अधिक समीप

पास आ रही झंझा में
विश्वास लपट का लेकर
चला काफिला दीपों का
खोये अँधियारे पथ पर



जागो ओ जनता की आस्था—जनकी आग पुरानी
जागो
माँगो ओ मानव, जय लेकर खुलती नयी कहानी
माँगो

'रौलट एक्ट' दान पत्थर का
जब माँगी थी रोटी
पूर्ण न कर पाये शासक
वे माँगे कितनी छोटी

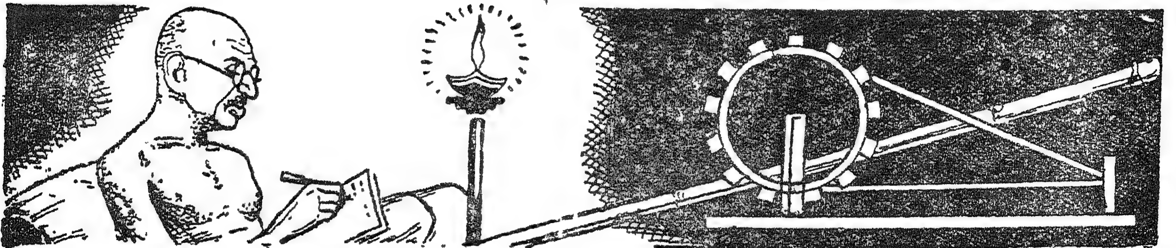




तब पिछली आशायें
सारा श्रम सारी सेवायें
लिये द्वार पर खड़े आज
हम क्यों फिर फिर पछतायें

क्यों न उठायें नये सिरे से जग पड़ने का घोष
छोड़े युग युग से संचित हम क्षीण तेज सन्तोष

और माँगने के पहले
हम तपा स्वयं अपने को
चलें अग्नि की राह सत्य
करने अपने सपने को

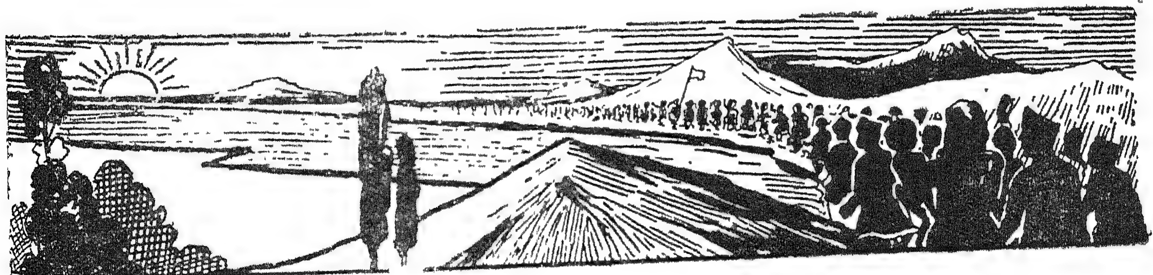


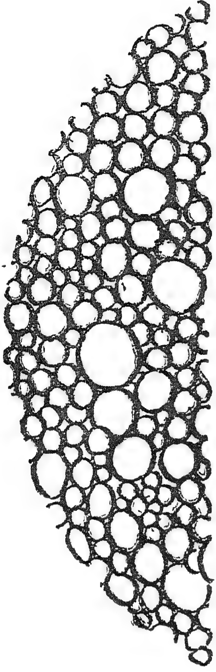
जनता को कर मूक
विवश कर देने का षड़यंत्र
हमें उलट देना ऐसी
सत्ता का ऐसा यन्त्र
हम सत्य के व्रती, मान
कैसे सकते आदेश
झुकने का आदेश
जाति के मिटने का आदेश

उठी, हुंकार
प्रबल प्रतिकार
उठा सन्देश
जगा आदेश

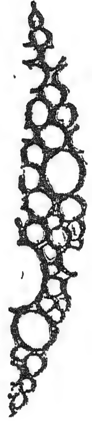
पहले स्थिर अपने में हुई लीन
आत्मा की ज्योति, जगा फिर नवीन
आत्मा की ज्योति जगा जनमन में
खोल दिए नयन महाशंकर ने

उमड़
जनता के आकुल चरण चरण
उमड़े





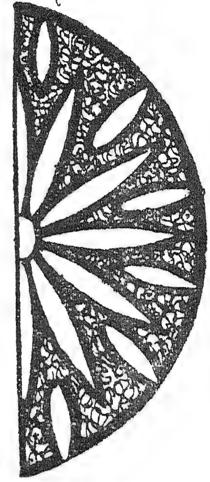
गुंजित है उत्तर में हिमगिरि
उठी लहर दक्षिण सागर में
कम्पन एक उठा पश्चिम में
एक घोष प्राची-अम्बर में
एक देश, हुंकार एक, बस एक चरण
पथ पथ पर
व्याकुल बादल गरज पड़े
जनता के चरण चरण उमड़े



उमड़ पड़ा जन जन का सागर
उमड़ पड़ा जन का आवाहन
आज टूटकर गिरा युगों
से अंध अचल नयनों का बन्धन
काली रात, मिलन नभ गंगा आकुल मन
स्पन्दन भर
घायल बादल बरस पड़े
चरण चरण उमड़े

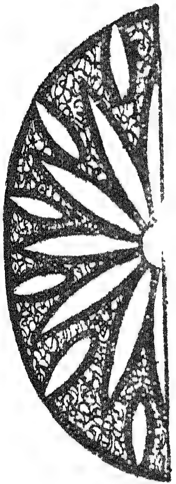
मिले फिर दो वज्र नभ को चीर
ढह गयी फिर बीच की प्राचीर
उठा मानव ले नया जय घोष
खिंचीं भौंहें सिंह की ले रोष



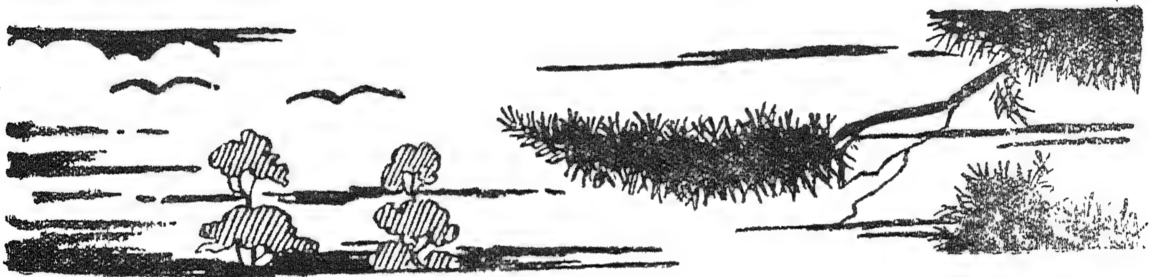


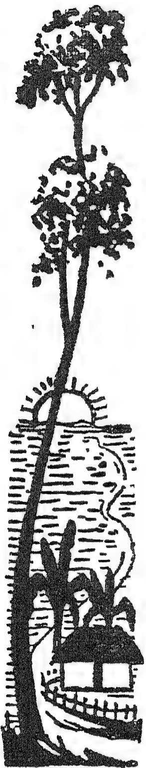
और तड़पी गोलियाँ ले आग
शान्त उज्ज्वल राह, खूनी फाग
उठी छाती छिदी जनता की
रंगी सूनी सड़क दिल्ली की
लड़खड़ा फिर बढ़े दृढ़ पद धीर
चली गोली छातियाँ फिर चीर
यदि रुका न गरूर सत्ता का
क्यों रुके अभियान जनता का

यह न छाती दलित मानव की
लिये पीछे जान मानव की
यह उठी प्राचीर महदाकार
घेरती जीवन-सहज अधिकार
झेल, फिर फिर झेल, दृढ़ पद डाल
चली जनता धीर अपनी चाल



चाल जिस पर झुके कितने शीश
शीश लुई चार्ल्स के से शीश
शीश जनता के विरोधों के
शीश मानव के लुटेरों के



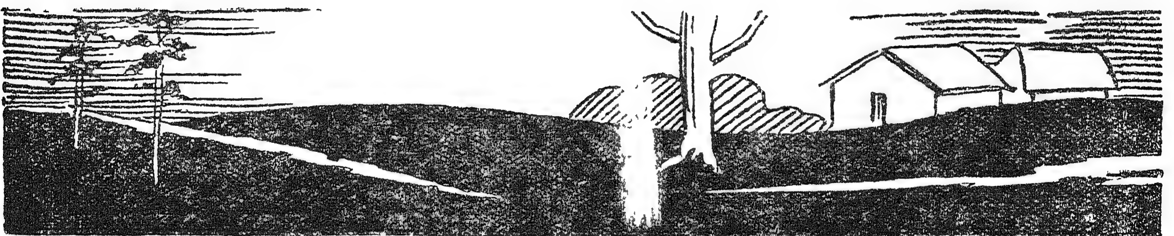


झुके जिसपर उबलते अभिमान
झुके जिसपर रावणी सन्धान
झुके जिसपर शीश सत्ता के
झुके दुर्मद प्रण महत्ता के
हिल गयी है दिल्लियों की कील
ढह गये कितने अजर बेस्टील
जार कितने झुके घुटने टेक
टूट भू पर गिरे मुकुट अनेक
चाल जो उठती कि आँधी ले
प्राण मुट्ठी में मरण भींचे

गोलियों के गान के ही बीच
बरसती पागल गनों के बीच
उबलते फटते बमों के बीच
तड़पती टामीगनों के बीच
जो चले है चाल उसकी चाल
जो बढ़े जो है चाल उसकी चाल
जो ढहे फिर भी उठे अश्रान्त
है वही जीवित धरा का लाल

———





आठवाँ सर्ग

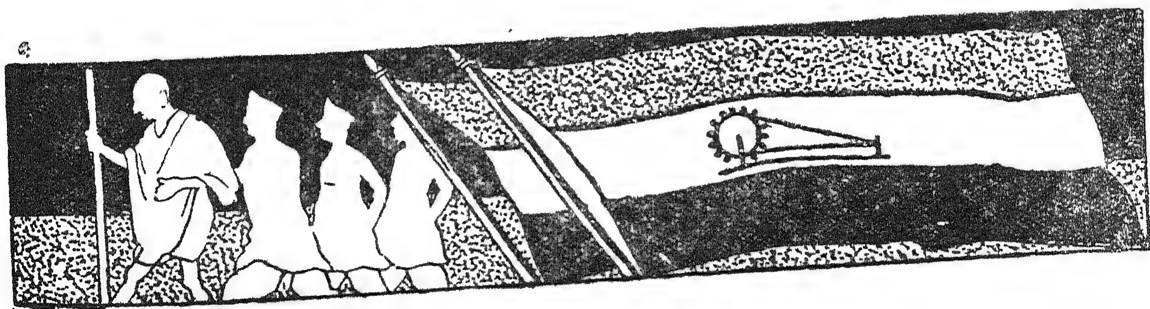
[जनता ने अपने बन्धनों पर चोटें दी और सत्ता ने सोचा इस वेग को हमारी मशीनगनों, संगीनों और लाठियों का प्रभुत्व बताना ही होगा। फिर जलियाँवाले बाग में चारों ओर से घेर कर डायर ने मशीनगनों से जनता को खतम कर देना चाहा। कुछ सौ ही तो मरे !

फिर आया दमन--जनता के जागरण के महाकाव्य की भूमिका जनता के रक्त से लिखी गयी। लेकिन यह जनता का बल तो अक्षयवट का बीज है। खून से ही जी कर उठने वाला जिसे किसी का भी डर नहीं।]

चोटें दो, दो चोटें, फिर फिर
चोटें दो आघात

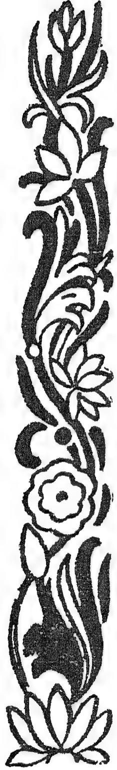
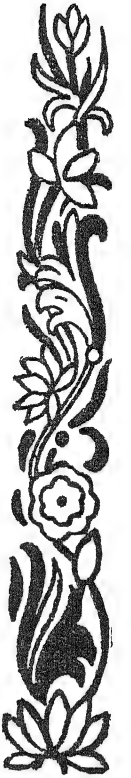
उठो उमड़कर, उठता
जैसे सिंह नींद के बाद
तार, तार हो गिरें जंजीरें
जैसे शबनम झरझर

जो सोने के समय
रात में पड़ीं देहपर आकर
दानव तो कुछ ही हैं किंतु खड़े
असंख्य तुम मानव

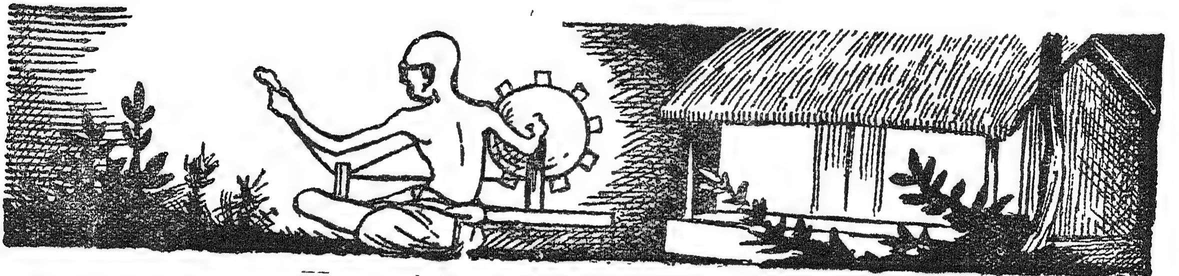


ओ अपार संख्या में उमड़ो
लाओ नवल प्रभात
चोटें दो, दो चोटें फिर फिर
चोटें दो आघात

झड़ती गोलियों के बीच चलते विप्लवी
वे प्राण
उछला खून जनता का कि लथपथ हो गया
जलियान

छिदतीं छातियाँ फिर धीर
ढह, उठती पुनः प्राचीर
हँसते रहे लथपथ प्रान
लोहू की नदी के तीर
जूझे राष्ट्र के अभिमान
जूझे जहाँ उसे प्रणाम
जन-संग्राम तुझे प्रणाम
जलियाँबाग तुझे प्रणाम
अब तक राष्ट्र का मुख
लाल, पाकर रक्त जिसका लाल
तुम्हें प्रणाम ओ पंजाब की
भू के अनोखे लाल

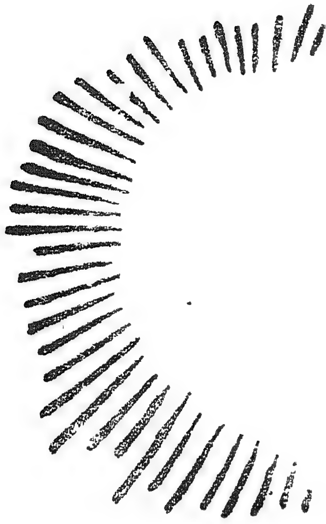


अब भी झूल उठते
नयन में तुम राष्ट्र के सम्बल
सोते अगम निद्रा में
बिछाये खून का अंचल

कल्पना की आँख में है
घिर गया जलियान
वह जो शीश का बलिदान
वह जो रक्त का अभियान
वह जो विवश की हुंकार
परवश का मरण अधिकार
वह जो छातियों औ'
गोलियों के खेल का त्यौहार

वह जो मरण की कटु तान
आई विष-बुझे बन बाण
जय हो कफन का वरदान
छिद व्याकुल हमारे प्राण
उसमें छिद हमारे प्राण
उससे जल हमारे प्राण
वर्षा बन चुके अनजान
में, हुंकार की भर तान





अब भी जब चलेगी बात
होगी जब मरण रात
तब तब भर प्रलय के
गान, गाती जा हठीली प्रान

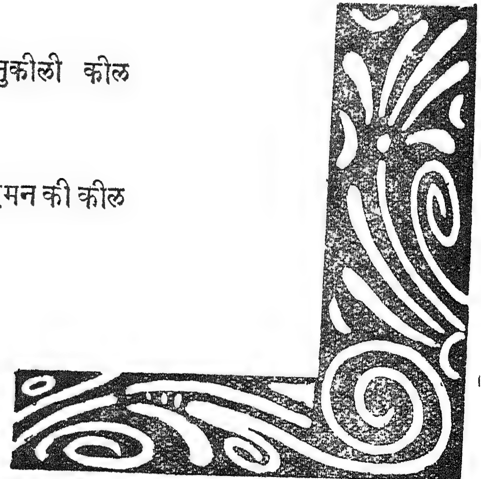
वह जो रक्त की दो
बूँद छितरी आँसुओं के स्थान
वह जो रक्त का शुभ-स्नान
लथपथ हैं हमारे प्राण

फिर से उबलकर वह खून छाता जा रहा है
फिर से रक्त का जलजात खिलता जा रहा है

फिर से गूँज उठता दानवों
का खोखला वह दम्भ
फिर से कसक उठते नोक
से वे फाँसियों के स्तम्भ



फिर से बेंत की सटकार
बूटों की नुकीली कील
फिर से कसक उठती
धँसी छाती में दमन की कील



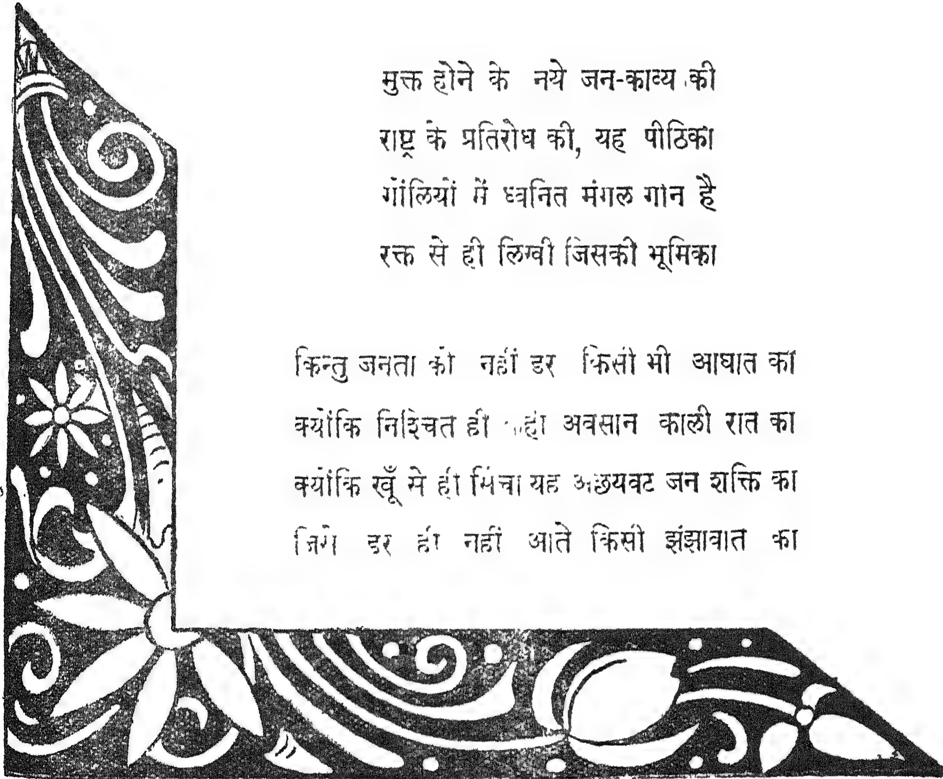


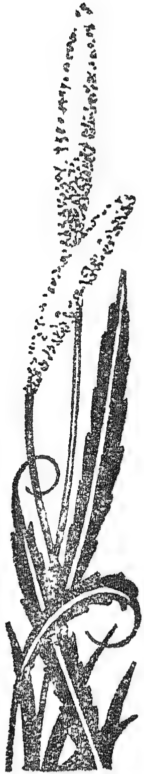
फिर खल खल उठाता हास
हँसता रहा दानव राज
फिर से चमक उठती
श्लथ लपट सी नग्न तन की लाज
फिर से उठे सिर वे
लाठियों से चूर रक्त-स्नात
फिर से रेंगती लाचार
हारे मानवों की पाँत

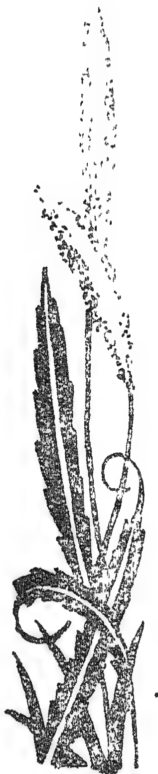
गोलियों की टेक पर गायन छिड़ा
गूँजता ही रहा कर्कश घोर स्वर
और संगीनें विकल बाँहें बढ़ा
मिली जनता को प्रथम ही द्वार पर

मुक्त होने के नये जन-काव्य की
राष्ट्र के प्रतिरोध की, यह पीठिका
गोलियों में ध्वनित मंगल गान है
रक्त से ही लिखी जिसकी भूमिका

किन्तु जनता को नहीं डर किसी भी आघात का
क्योंकि निश्चित ही हो अवसान काली रात का
क्योंकि खूँ से ही सिंचा यह अक्षयवट जन शक्ति का
जिसे डर ही नहीं आते किसी झंझावात का







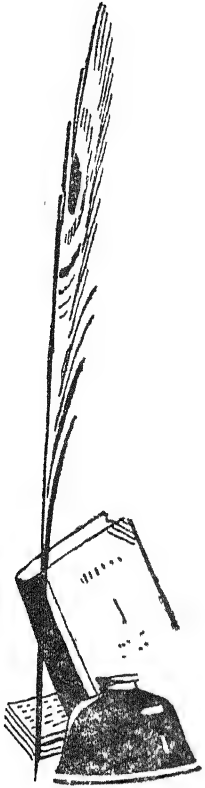
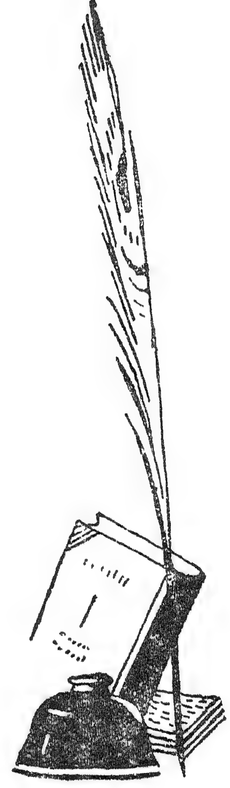
क्योंकि यह जन-पंथ बलि
का पंथ है
जहाँ हारी बाजियाँ जन
जीतते है
रक्त और कटे सिरों के दाँव पर

क्योंकि यह जन-शक्ति
विश्व-विकास है
बिना जिसकी मुक्त
शक्ति प्रवेग के
कदम रुक जाते कँटीली राह पर

क्योंकि यह जन-घोष
विश्व-पुकार है
बिना जिसके घोष के
मरघट न जगता
कण्ठ बँध जाते मरण के द्वार पर

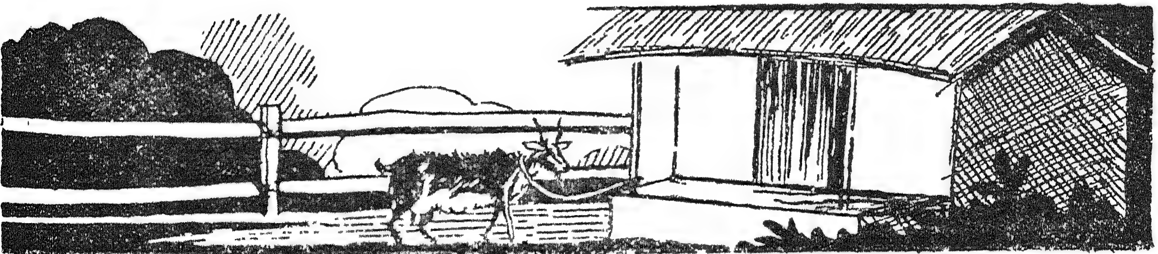
वे छीनेंगे अस्त्र-शस्त्र कायर
अभिमानी
और रखेंगे हमें दबा काले
गह्वर में



वे तो चाहेंगे वह घेरा
कब्र बन चले
जहाँ कब्र के ऊपर छा
जाए सन्नाटा
और दबी जनता की छाती
सड़क बन चले
जिस पर दौड़ें प्रलय घोष
ले टैंक मोटरें
पैदल घुड़सवार की धप् धप्
टप् टप् से हत
सुनकर भी अनसुनी कर
चले जनता मानी

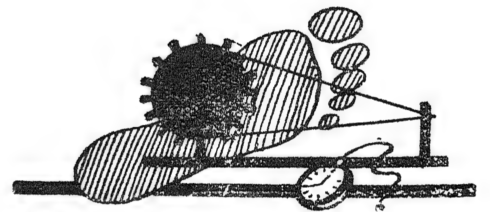
किन्तु उन्हें क्या पता पुत्र ये
हैं पृथ्वी के
ये हैं छोटे बीज महाबट
के बरदानी
कौन महाबट ? अरे वही जिसके
पत्ते पर
रक्षित थे भगवान प्रलय के
जलावर्त में



ऐसे ही यह वृक्ष अजर
अपने पत्तों पर
सत्य उठाये फिरता है दुर्मद
झोंकों में
इसे झुकाने झुके अरे कितने
वज्रायुध
कितने मानी कंस रावणादिक
अभिमानी
कितने बेन, विराध, परशुधर
रहे काटते
देश-देश में फैली इसकी
शाखा शाखा

बटें, जड़ें, छाया, गंभीरता, मौन
निवेदन
खलते रहे असंख्य हिटलरों
मुसोलिनी को
फ्रैंकों को तोजों को चर्चिल
औ एमरी को



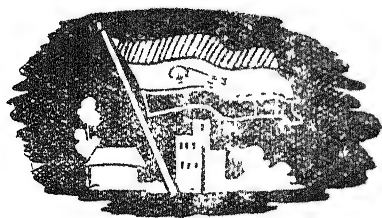


इनके भी प्रपितामह कितने विस्मार्कों
औ मेटरनिक को
जारों को, पोपों को, चार्ल्सों
औ' लुइयों को
और सभी ने भरसक काटा
रक्त बहाकर
और हाँफते चले गये सोने
कब्रों में

वे मिट्टी में मिले, उन्हीं की
कब्र चीरते
ठीक वहीं से जहाँ रो रही
उनकी छाती
फोड़ भूमि, छाती की हड्डी,
एक चोट में
उठा उफनता बीज लिए ऊपर
अंकुर ध्वज

चला एक युग तक भीषण
संघर्ष धरा में
रहा जूझता अंधकार में
अंकुर क्षण क्षण





किन्तु दरकती ही जाती

छाती पृथ्वी की

और शिलाएँ राह बनाकर

टूक हो रहीं

अंकुर चला निकलता क्षणक्षण

उफन उफन कर

सुनता ऊपर स्पष्ट प्रतिध्वनि

चपल चरण की

भीतर से विह्वल आतुर क्षण

क्षण विकास रत

कब्र चीखती रही बीज ने

अमृत पी लिया

नव प्रकाश का, मलय वायुका

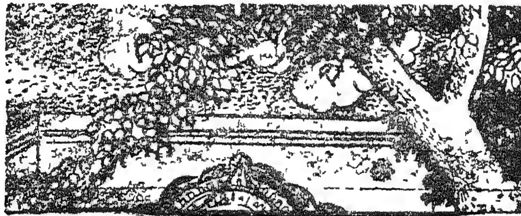
मुक्त हासका

और रुपहला वह अंकुर

कोंपल ले हँसता

श्लथ, मरन्द भाराकुल, ज्योत्स्नाकुल

रजनी में



और गन्ध की वंशी सी
रजनी गंधाने

एक टेर से घेर लिया
हँसते पत्तों को

आया प्रात बिछाता विह्वल
चरण चरणपर

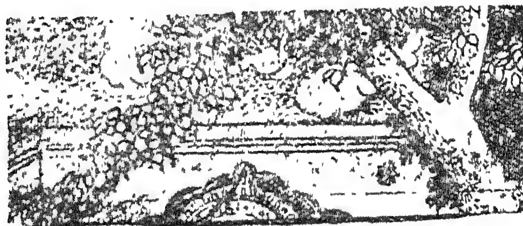
पारिजात झर, मुग्ध भैरवी
रज मदिरालस

रक्त बीज जनता का उन्नत
शीश तन गया

जिसे काटते रहे विरोधी
कब्र द्वार तक

फिर वैसे ही पत्ते चौड़ी छाती वाले
फिर वैसी ही नसें उछलती नये प्राण ले

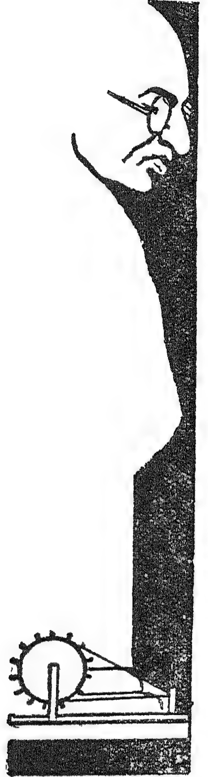
फिर वैसा ही गायन मलयज की बयार में
फिर वैसा ही गर्जन झंझा के प्रहार में

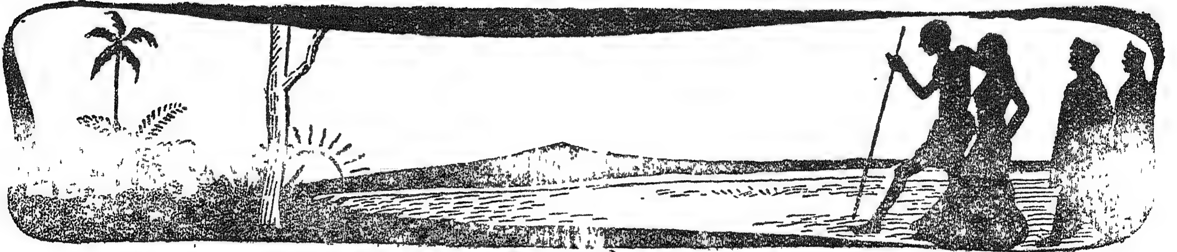




फिर वैसी ही छाँह, स्निग्ध शीतल नीरवता
फिर वैसी ही अभय गहनता नीड़ोत्सुकता
फिर पहला वरदान वही
सन्देश शान्तिका—
जियो जियो ओ प्राण-शक्ति
तुम नव मानवता

———





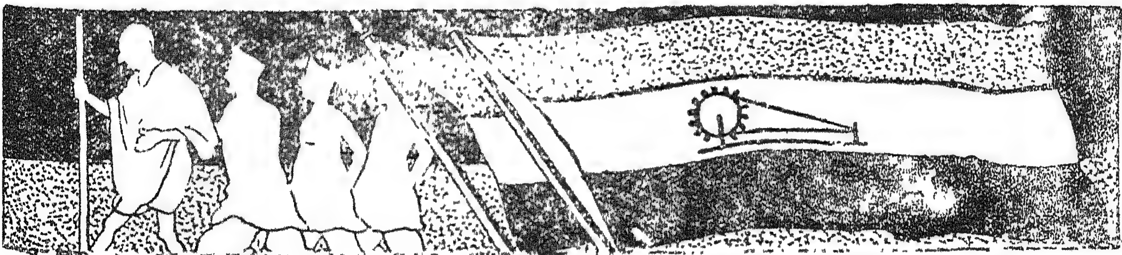
नवाँ सर्ग

[जनता के जागरण की वंशी बजने लगी और युगों से बन्द हृदय के शतदल खुलने लगे । मनुष्य की दैवी प्रवृत्तियों ने विजय पायी । जिस समय समग्र विश्व एक भयंकर षडयन्त्र में चल रहा था उस समय भारत ने मानवता की राह पकड़ी और अपने स्वतंत्रता संग्राम तथा शहीदों की परम्परा को और भी वेग से चलाया ।

उनका कर्तव्य बहुत बड़ा था क्योंकि मानव का अब अपनी शक्ति पर विश्वास कम हो गया है और दूसरी ओर दानवी शक्तियाँ पहले से अधिक संगठित हैं ।]

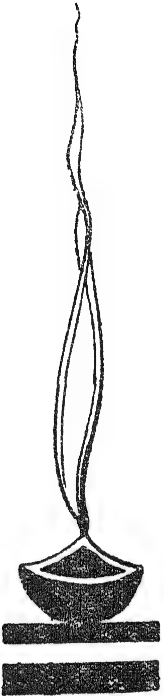
दीप बुझ जाये नहीं मन
गीत रुक जाये नहीं

क्षितिज मिट तूफान
में घुल जायँ
साथी प्राण के जलजात
अनगिन नयन से बह जायँ
फिर भी बादलों के वृन्त पर
खिलती सुनहली साँझ मुरझाये नहीं
गीत रुक जाये नहीं



वेदना ले रो
फिरें ये प्राण
ज्योति के ये दीप
पायें धूम में निर्वाण

फिर भी अन्धतम के द्वार पर
बजता प्रभा का राग रुक जाये नहीं
गीत रुक जाये नहीं

रक्त से रंग जाय
पथ की धूल
प्रातके पहिले चलें
झर प्रातवाही फूल

फिर भी कंटकों की नोक पर
चलता विजय-अभियान रुक जाये नहीं
गीत रुक जाये नहीं

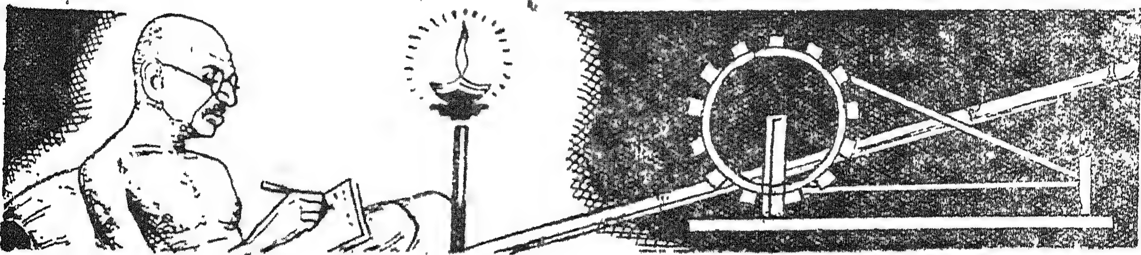
ओ शहीद तुम !
ओ शहीद की सेना !
ओ सेनाधिप !
तुम बढ़ गये हरी घासों पर

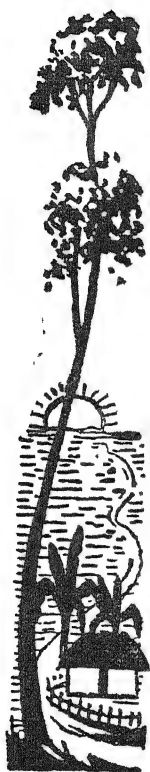


पैर बढ़ाते—
गिरा गिराकर खून—
खून कि घासों पर शबनम की बूँदे
दमक रहीं ले आभा खून भरे
प्रभात की।
ऊपर नीला आसमान
नीचे धरती असहाय
खड़े लिये तुम शान्त लहर सागर का
भर उन्मेष
उठने दो तुम उन्हें धरा पर- -
द्वन्द्व बांधकर
शस्त्र हिलाते
घोष उठाते
खून गिराते
खड़े रहो तुम ओ मेरे आदर्श
कि जैसे गहन गह्वकांतार
कन्धे सटे लिये नीरवता घोर
उन्हें भोंकने दो संगीने
और चलाने दो मशीनगनें
गोला गोली



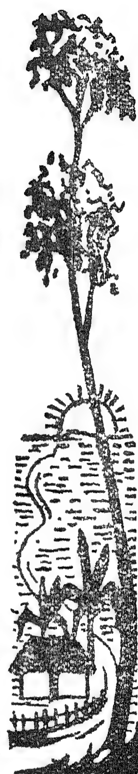


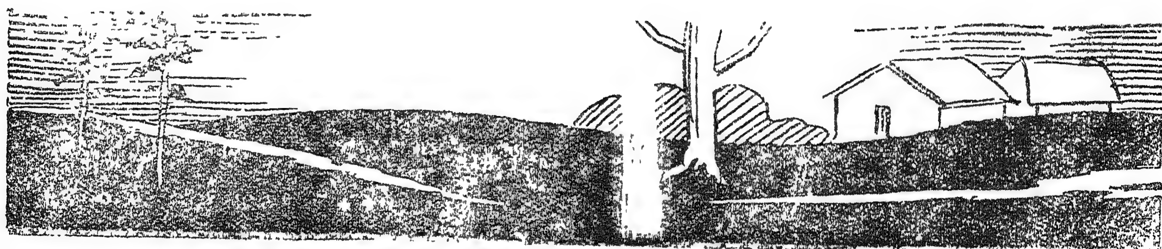




किन्तु अचल तुम
बँधे हाथ ले देखो गहरी दृष्टि—
दृष्टि अजर जो अस्त्र महाजनता का
अपराजेय
जिसके तुम प्रतीक हो ओ अविजेय।
देखो उनकी ओर दृष्टि भर
तब तक
जब तक उनका काला काला क्रोध—
क्रोध—पहाड़, सर्प सा कुण्डल मारे—
गल गल कर बह जाय न
आँखों के आँसू में
और तप्त तब गरम लाल खूँ
शर्माये उनके गालों पर
उछल पड़ेगा
ओ अविजेय शहीद!

कष्ट का विष आ रहा
पीते चलो पीते चलो
अरे मन ले वेदना
जीते चलो जीते चलो





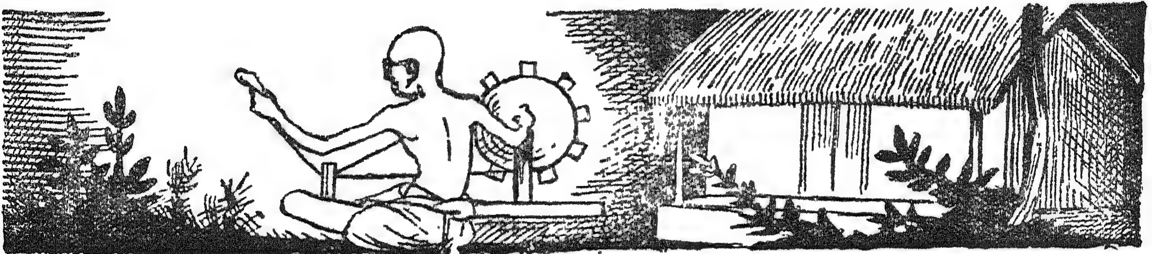
क्योंकि इस शुभ वेदना
    में छिपा अमर प्रकाश है
जहाँ आकर नयन खोल
    रहा नवल मधुमास है

क्योंकि इस शुभवेदना
    से ही उमड़ कर प्राण में
उत्स करुणा के उमड़ते
    दृढ़ खड़े पाषाण में

और भर जाता गगन
    फिर बादलों की भीड़ से
भूमि का मन फूट खिल
    उठता झड़ी की मीड़ से

राह-घर सब उमग
    उठते एक नयी बहार से
नत हुई लगती गगन में
    साँझ आँसू भार से

और मधुमय प्रात की
    अनुरागमयि धूमिल घड़ी म
विश्व अपलक भींगता
    रहता मधुर झरती झड़ी में



करुण ओंठों का क्षितिज गम्भीर सूनापन लिये
रुँधा हो पर उफनता झंकार करुणा की पिये
क्यों न नयनाकाश में घन अश्रु के घिरते रहें
पर उठे मुसकान-सुरधनु ओट करुणा की किये



है हमारे पास मधुमय हास
करुणा की अमिट झर
खुल चला करते नये ही
द्वार केवल एक स्वरपर
हम उठावें आँख बिछ
जायें गगन के फूल पथपर
हैं हमारे द्वार ये
निर्माण के शतदेव तत्पर
पा नयन में शक्ति प्राणों
में अजर बल की निशानी
ले अटल इतिहास करुणा
का अमर युग की कहानी
हम उठायें क्षुद्र लोहे
की बनी तलवार केवल
और माँगें न्याय, केवल
दानवी व्यवहार के बल

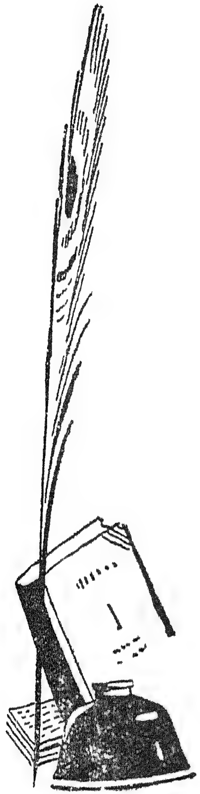


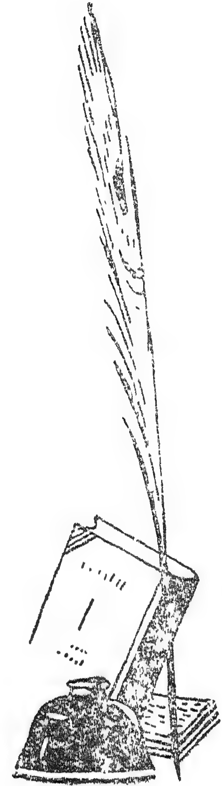


हैं हमारे चरण उन मधुमय
पदों के गानवाही
जो चले थे पूर्व-ऋषियों
संग उठा स्वर प्राणवाही

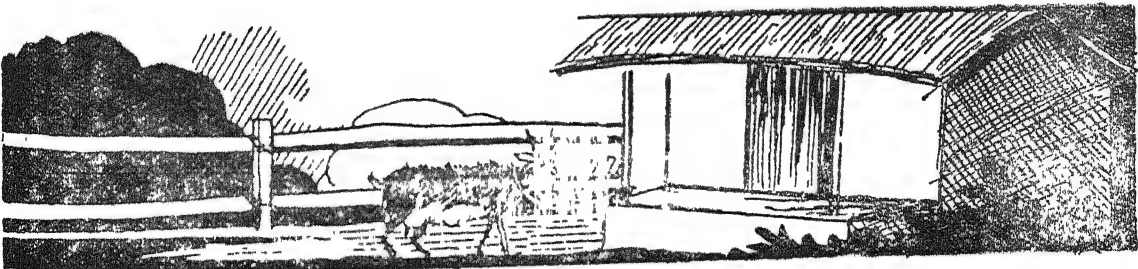
भूलना मत बुद्ध के पग
चिन्ह से चिह्नित डगर है
रो कहीं न उठे सिसक
कर क्योंकि मानव की डगर है

उन पदों की लाज ये
पद ले न डूबें राह में
हम न भूलें प्राण का
स्वर विजय के उत्साह में

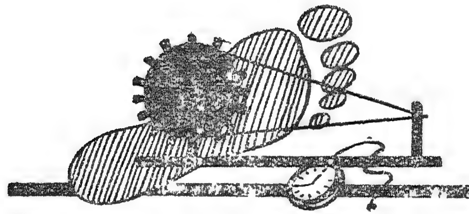




बढ़े चलो बढ़े चलो
रुके न प्राण के प्रतीक
सत्य प्रेम, साहसी
झुके न सत्य का प्रतीक–
ध्वज, महान् सारथी
कहीं न रुक चले प्रवाह
झूमते प्रपात का



इसीलिए उछाल प्राण
ओ समुद्र के व्रती
बढ़े चलो बढ़े चलो
करो विकास प्राण का कि
प्राण के प्रकाश का
विदीर्ण कर तिमिर गुहा
उठे प्रकाश हंस सा
कही न राह प्रात की
तमिस्र में दबी रहे—
इसीलिए उठा मशाल
ओ प्रकाश के व्रती
बढ़े चलो, बढ़े चलो





दसवाँ सर्ग

[दिल्ली अपनी तड़क भड़क लिये वैसी ही खड़ी रही, ग्राम नगर वैसे ही खड़े रहे लेकिन देश की धारा बदल गयी। दिल्ली खड़ी थी किन्तु दिल्ली की दीवारें हिल रही थीं क्योंकि जिन ईंटों से सत्ता खड़ी होती है वे ही अब नींव में दबी रहने से इनकार कर रही थीं। असहयोग— और दिल्ली चिन्तातुर खड़ी रही। सारा देश उठ कर इन बन्धनों के बाहर चला गया।

एक देशव्यापी प्रार्थना का चित्र आँखों के सामने झूल जाता है। गान्धी बैठे हुए हैं और नीचे कोटि कोटि दीप जल रहे हैं।

'आओ' पुकार हुई और पुरुष स्त्री बच्चे मुसलमान हरिजन सभी खड़े हो गये।

एक राग जिसमें देश के भिन्न भिन्न बाजे बजने लगे और पीछे थी चरखे की भनभन।]

खड़ी वैसे ही रही दिल्ली सजी जमुना किनारे
और सीमाएँ बनी हीं रही सागर के किनारे
खड़ा हिम ले रहा हिम का देश, छाती में जलन भी
क्षितिज वैसे हो रहे, गिरि भी वही, सूना गगन भी
दम्भ सत्ता के सहारे नगर सरिता के किनारे
प्रस्तरों का लोक वैसे ही खड़ा पंजर पसारे

शान्त ऊपर गगन मौन
प्रशान्त
शान्त स्तम्भित विश्व पूर्ण
प्रशान्त

शान्त सब पर ध्वनित केवल एक गुनगुन गान
दूर, पथ-प्राचीर से भी दूर
दूर, क्षितिजालोक से भी दूर
उठ रहा किस करुण मन का मन्द स्वर सन्धान
नहीं बाहर इसी सीमा में
कष्ट की इस घोर परिमा में
रच रहा है नये जग का कौन स्वर्ण विहान
ताकती, दिल्ली भयातुर
हुए खाली जड़ नगर-पुर
निकल इस प्राचीर से चल पड़े व्याकुल प्राण



नये नर नारी नये घर

नये ही विश्वास से भर

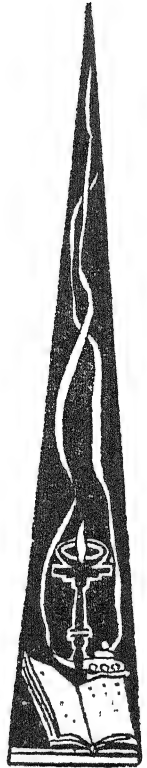
नये जग में खोलता है नयन हिन्दुस्तान

हाथ जोड़े नयन अपलक

जगा मन में स्नेह-दीपक

चरण तल पर प्रार्थना-रत आज शत शत प्रान





शान्त मधुर भैरवी काल में

निश्चल दीप प्रार्थना में रत

सिहरन से भर रहे युगों

से मानव के मन के गहरे क्षत

धूमिल बेला झिलमिल आँसू के हिल जाते बन्दनवार

ओर नयन के द्वार द्वार पर प्राणों को आरती उतार

धीरे धीरे धूमिल बेला में मलयज

की धूल उड़ाते

मधुर भार पलकों पर देकर

करुणा के पाहुन घर आते





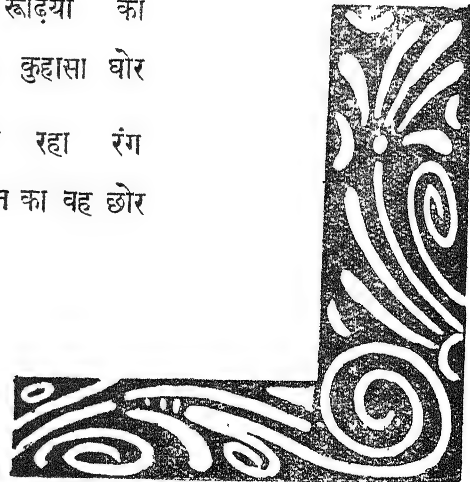
और वायु आयी भिखारिनी
प्राणों से छू गयी मधुभरी
सौंप गयी पूजा-अजान के
स्वर को आँसू भरी मधुकरी

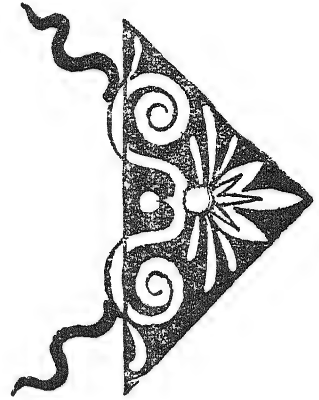
फिर लेकर सन्देश चली चल जग भर में पहुँचाने
वैष्णव जन तेने कहिये जे पीर पराई जाने

उठो जनता तुझे आज पुकारता
मधुमास
छोड़ दो भय पैर पर स्थिर
ले नये विश्वास
छोड़ दो बन्धन उठा लो
भूमि से ये प्रान
तान लो दृढ़ लक्ष्य पर ये तीर
कर सन्धान



क्योंकि युग की रूढ़ियों का
यह कुहासा घोर
अब न टिक सकता रहा रंग
गगन का वह छोर





तुम बनाओ जुटा अपने प्राण
यह दीवार
बिना सोचे बहुत ऊँची यह
खड़ी मीनार
तुम रहो निर्माण में रत, हिल
रही दीवार
तुम्हारे तन पर खड़ी है
ढह रही मीनार
तुम हटालो दबे कन्धे
एक साथ पुकार
ढहे दिल्ली ताश के घर सी ढहे
मीनार

खोल दो ये द्वार मन्दिर के पुजारी
द्वार पर ये जन खड़े हैं
द्वार पर हरिजन खड़े हैं
बिना उनके अधूरी पूजा तुम्हारी

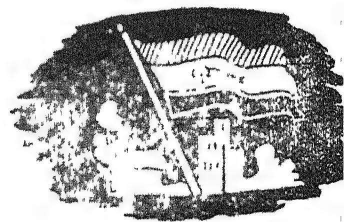
क्या तुम्हारे अंग व्याकुल ही रहेंगे
शुद्धि के ये द्वार तेरे
शुद्ध वातावरण घेरे
क्या अरे ये शुद्धि के भगवान बाहर ही रहेंगे

यह तुम्हारी नीति है किस काम की
ये विषाद भरे हुए घर
ये निषाद अड़े चरण पर
बिना शबरी स्थिति कहाँ है राम की

ये हमारे प्राण संग संग ही रहेंगे
सत्य आ करके फिरे भी
द्वार तक आकर फिरे भी
श्वान यदि नीचे युधिष्ठिर भी रहेंगे

हत दुःशासन के दुष्ट प्राण
गत बन्धन गर्जित खड़े भीम
गाण्डीव उठाये पार्थ खड़े
ले सत्य युधिष्ठिर अपरिसीम
नारी के उठ ओ मातृ रूप
जिसकी छाती में दया दुग्ध
हो मूर्त विशाले पड़ा
चरण पर मानव शिशु स्वरहीन मुग्ध
उठ री मानव की भग्न
मात्र की भोज्य, मिटा पिछले बन्धन
कब तक चुप बैठेगी
मन में, विद्रोह कर रहा जब कण कण





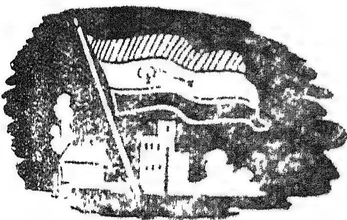
बढ़ रहा सुनलो सड़क पर
भीड़ का फिर शोर
बन्देमातरम्

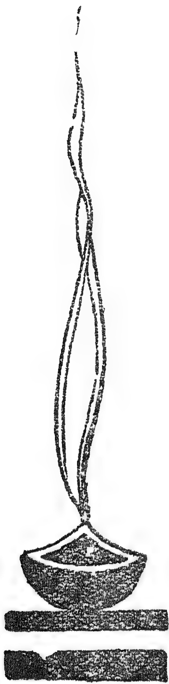
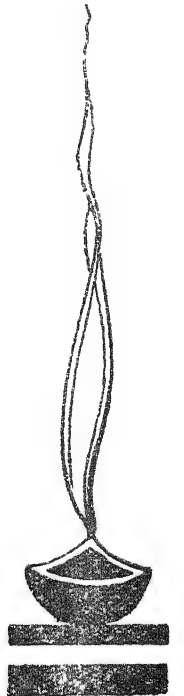
जगमग खुले ऊषा द्वार
नारी उठो आई भोर
बढ़ रहा—

साथ आओ पग मिलाओ
घोष-स्वर निर्झर जगाओ
ओर कन्धे से मिला कन्धे चलो उस ओर
उगती भोर है जिस ओर
बढ़ रहा सुनलो सड़क पर भीड़ का फिर शोर
बन्देमातरम्

घिरी अगर विरोध बन्धन
फिर चला आ आ निवेदन
तोड़ युग भी लाज पाहन
उठालो स्वर घोर
ये हुंकार के स्वर घोर
बढ़ रहा सुनलो सड़क पर भीड़ का फिर शोर
बन्देमातरम्





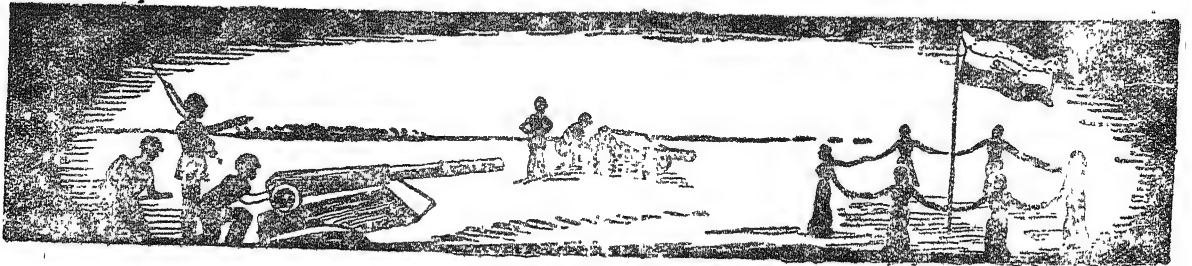
छा रहा धूमिल धुँआसा
छँट रहा धूमिल कुहासा
उठा एक नये सिरे से विश्व मधु में बोर
धूमिल विश्व मधु में बोर

उठ रहीं स्वर-लहरियाँ ये
हृदय तक जो आ बुरायें
क्या न स्वर की तान से ये हुए प्राण विभोर
मन की ऊर्मि हर्ष विभोर

उमड़ आये ये अमित जन
और तू ले खड़ी बन्धन
खोल खिड़की झाँक देखो उठे मेघ अछोर
उमड़े उठे मेघ अछोर
भीड़ का फिर शोर

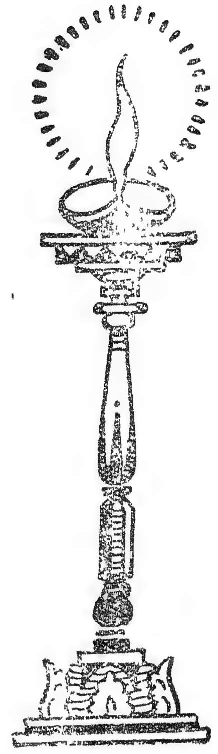
बन्देमातरम्

गूँजता फिर रहा उद्बोधन
स्पष्ट सुनता विश्व सम्बोधन
'उठो नारी उठो हरिजन हे
जगो दलितो जगो जनमन हे
उठो भय का घोर कुहरा चीर
बनाते अपनी अजर प्राचीर'

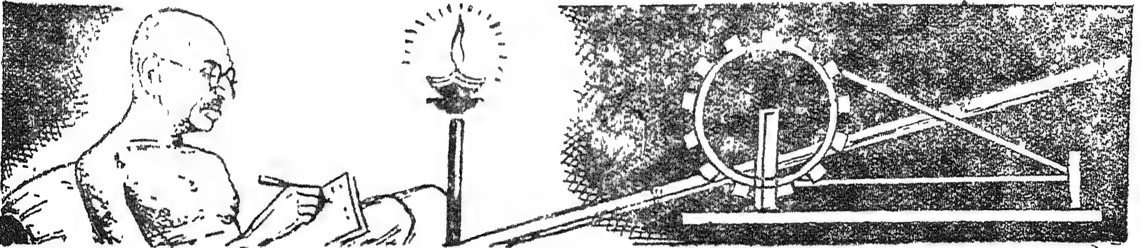


टूटते वे तार झन झन
जो बने थे प्राण-बन्धन



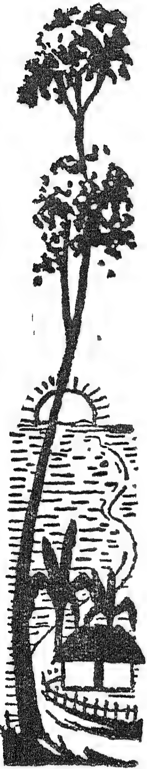


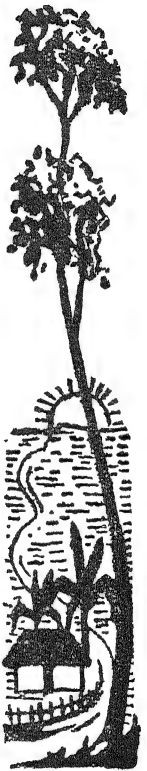
क्योंकि तनते जा रहे हैं तार
चलता चक्र पावन
ढह रहे विध्वंस में निर्माण
की चलती कहानी
खींचता काली निशा में
सूत की उजली निशानी
राह खींच रहा रुके जन
के अमर अभियान की
गूँज सी उठती गगन
में रुद्ध भारत-प्राण की
वेदना ले, कल्पना ले
वन्दना ले देश की
श्रम रहा भर मन रहा भर
लहर चल आवेश की



ले आत्मा का निर्जर निनाद
फिर कात सत्य का धवल सूत
निर्माण कर रहे कृष्ण, देश
की द्रौपदियों हित वस्त्र पूत

गूँजती ही रही नभ में सजगता
की सीख
माँगने जब उठे जन से
जागरण की भीख

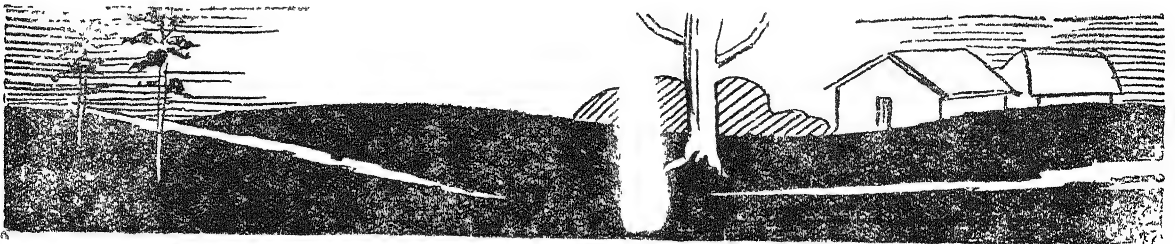




तब उठाकर प्राण ही
दे दान में
माँगते विश्वास जन
प्रतिदान में

सिन्धु जनता का उमड़ता चरण पर
आँकने जो खड़ा जीवन मरण पर

पुरुष
उठा सहास गोली झेलता
नारियाँ
उठ चलीं शासक काँपता
मिलों



बाहें मिली छाती मिली विह्वल

चलो

राहें खुलीं पद बढ़ चले चंचल

बनाओ

फिर उठ गयीं नव-भित्तियाँ

शान्त

मुट्ठी में चपल चितवृत्तियाँ

ये अछूत

अछूत से हरिजन हुए

अरे गरजो

घोष ने नभ छू लिये





आज जन की घोर लहरों पर रुके

प्राण की ध्वनि सुन रहे आधे झुके

तुम खड़े राग ले एक

महासंगीत उठ रहा डगर डगर

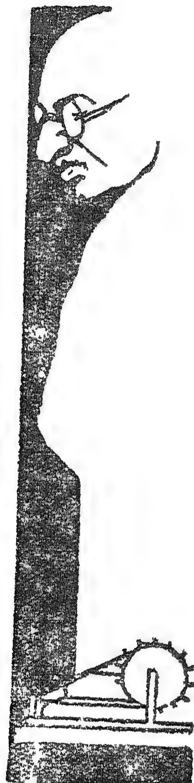
बेला सितार वंशी आदिक

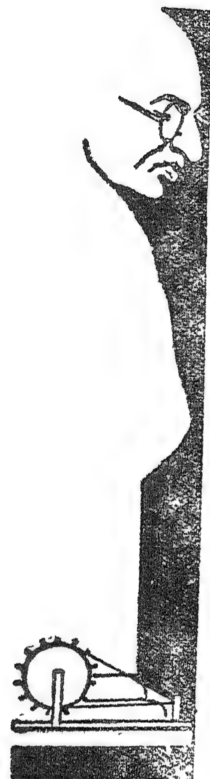
के स्वर से झंकृत ग्राम नगर



राह पर तप्त जग जाग सिर तान कर
मूर्ति बन शक्ति की वक्ष में साँस भर
एक स्वर में ध्वनित घोष नवक्रान्ति का
एक पग में खिला फूल नवक्रान्ति का
एक हुंकार से नींव हिलती चली
एक ही साँस से वायु खिलती चली
एक ही बार जो नयन ऊपर चले
बन्द नभकोण के द्वार खुल चले चले
छोर से छोर तक उमड़ती पाँत पर
छाँह बन छा गया इन्द्रधनु राह पर

———







ग्यारहवाँ सर्ग

[एक ओर जनता में स्फूर्ति के प्राणकण फूट रहे थे और दूसरी ओर बापू शासकों को अधिक से अधिक मौका दे रहे थे कि वे अब भी सजग हो जाँय। सारा देश प्रस्तुत था किन्तु सत्ता का हठ राह देने को प्रस्तुत नहीं था। सब कुछ खो देने पर केवल शान की झूठी ऐंठ ही रह गयी थी उसे ही खोकर वे कितने दिन टिकते! [illegible] बापू ने अन्त में निराशा के काले बादलों में भटकना छोड़ दिया और सत्याग्रह करने के निश्चय का ऐतिहासिक पत्र वाइसराय को लिखा साथ ही जनता में [illegible] था। [illegible] की हुंकार भरने का निश्चय ध्वनित हुआ, और लगा कि देश में एक [illegible] एक आग सी दौड़ गयी।]

उतनी घोर निराशा काली आशा का दीपक हृद तल में
कब तक भटकोगे सोने की छाँह बने बादल बादल में

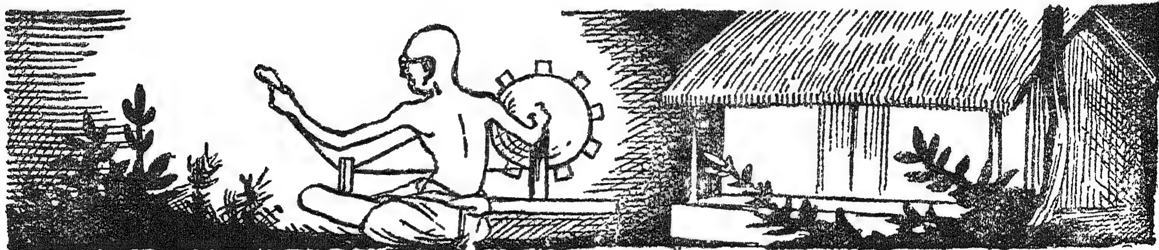
जनता ने भरी हुंकार
रुद्र पुकार बारम्बार
बोलो चेतना के देव
बोलो गर्जना के तार
फिर से कसक उठते घाव
फिर से उबल उठता खून
उसको क्रान्ति की सौगन्ध
दे ललकारता है खून



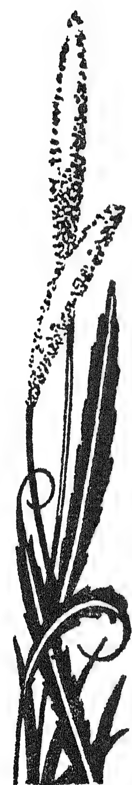
रावी की लहरों की बिजली आज रमा अंग अंग में शीतल
ओ झंझा के देव पुकार रहे तुमको विप्लव के बादल
तुम दक्षिण के पवन झकोरो, ये स्वर भर पागल हो जायें
तुम ऊषा के बन्धन खोला ये पभात के गान लुटायें

उपेक्षा की झंझा के बीच
बुझ गये दीपक के जब प्राण
लिए लौटे तब तुम हतआश
धूम में घूम रहा निर्माण
बुझे दीपक का घूर्णित धुँआ
लपट की जिसमें व्याकुल खोज
भभकने को आतुर यह देश
लिये भूखी लपटों का ओज
फेंक कर दिया बुझा असहाय
द्वार पर दिल्ली का हतभाग
पुकारा तुमने व्याकुल प्राण
धुयें के बीच लपट सा जाग

"उठो आज लाचार देश
प्रतिरोध तुम्हारा जागे
जगो आज लाचार देश
हुंकार तुम्हारी जागे

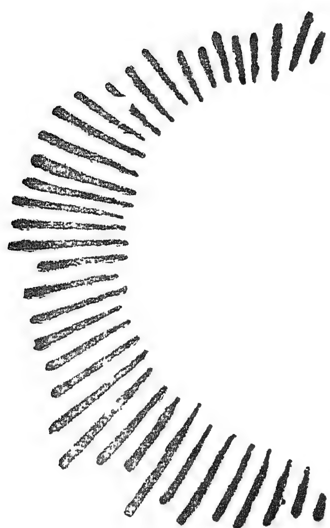


एक बार फिर उठ ओ मेरे प्राण
गरज आकुल अन्तर ओ
एक बार बस एक बार फिर
जन जन का उद्योग प्रखर हो
"अहिंसा की देवी ने मुझे
पुकारा है फिर से इस बार
हृदय के अन्तरतल में मौन
साधना ने खोले हैं द्वार




मैंने कभी न चाहा
धूलि धूसरित हो इंगलैण्ड
युग युग की संचित सत्ता
पर खिले हँसे इंगलैण्ड
किन्तु हमारे रक्त-प्राण से
फिर न उठें दीवारें काली
फिर न तुम्हारे नयन लाल हों
पी झूठी सत्ता की प्याली
भारत के शोषित जन जन पर
छाई जो तलवार युगों से
फिर न चाहते पूजन उसका
हम अपने लाचार लहू से





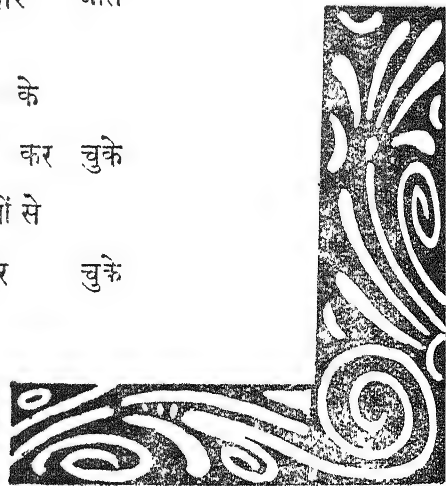
तुमने दिन दिन चूस चूस कर
रक्त हीन कंकाल कर दिया
सोने चाँदी की दुनिया को
दर दर का कंगाल कर दिया

इन तैंतीस कोटि जन जन की
भूखी आँखें जाग पड़ी हैं
इन तैंतीस कोटि जन जन की
रुद्ध भुजायें मचल पड़ी हैं

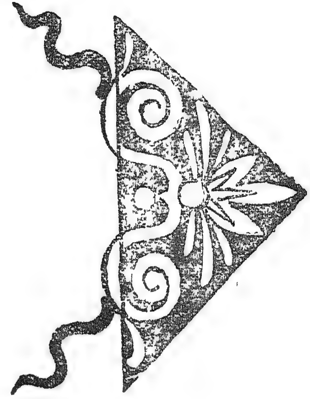
आज पराधीना धरती की चिरवंदिनी
पुकार उठी है
इन आँखों, हाथों प्राणों की
कन कन में हुंकार उठी है

संस्कृति की जड़ हुई खोखली
हम गुलाम से भी हैं बीते
खाली हाथ शस्त्र खो बैठे
कोई हमको हारे जीते

हम भी कुछ दिन स्वप्नलोक के
वादों पर विश्वास कर चुके
इन गोलीगोंजों की गोली बातों से
हम पेट भर चुके



हम दुहराते नये सिरे से शुभ स्वतंत्रता की आवाज
अब या तो हम यहाँ रहेंगे या कि रहेंगे शासक आज”



उस विशाल बेचैनी के पीछे
आकुल था देश
बापू ने मुड़ दिया गरजती
लहरों का आदेश

“क्रान्तभरा इन अँधियारी
घड़ियों में ओझल हो न स्वदेश
रहो अहिंसक आत्मोन्नत बन
बापू का आदेश

सहो सहो झंझा बिजली
वज्रायुध के आघात
पीड़ा का ले दीप
बढ़ो आने दो काली रात

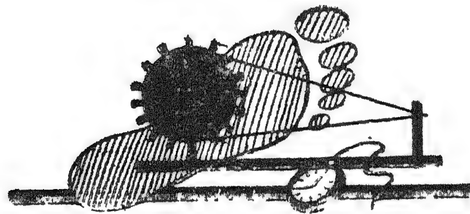
कष्ट हमारे अगणित अनगिन
राह हमारी अँधियारे से
पर उद्देश्य सामने हँसते
मानो के उज्ज्वल तार से

इसीलिए यदि हमें विश्वके
वक्षस्थल पर जीवित रहना
और भूख से तड़प तड़प
कर शनैः शनैः मरने से बचना

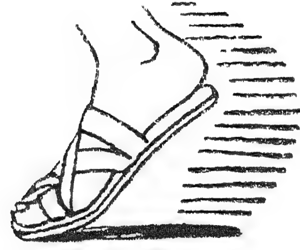
तो चाहें घन गिरें बिजलियाँ
गिरें दिशा झुक जाये
अंधकार में धूमिल पथ की
रेखा ही मिट जाये

बाहर भटक रहे हाथों का
सूनापन अंतर से भरकर
मनका झिलमिल दीप जलाओ
अंधकार में ओझल पथ पर

माँग माँग कर हार चुके हम
अब बढ़ कर हमको है लेना
बढ़ो देश बढ़ चली अमर
पथ पर जन जन की आकुल सेना







दृढ़ व्रती निर्माण उन्मद
गं अमरता नापते पद

घिरे धुँयें के बीच डगर पर
लपटों का दल चला अकेला

गरजने दो हमें भी छितरा लहर से प्राण
अरे हँसते छातियाँ ताने अभी पाषाण

विश्व में अभिव्यक्ति प्राणों की मिले जनको
इसी से तो चले तुम पथ पर उठाते थाप

"मैं मिटूँगा गूँज बन कर दलित प्राणों को
और सूना देह होगा क्षुब्ध लहरों पर"



बारहवाँ सर्ग

[दाण्डी का ऐतिहासिक अभियान भारतीय जन-संग्राम के राग का सब से ऊँचा आरोह है। एक ही सीधी सी राग की रेखा सी वह पथ की रेखा फैली है। हम सोचते हैं और बिजली की रेखा सी वह स्मृति में खिंच जाती है। इतिहास में ऐसे अभियानों की संख्या इनी गिनी है, जिसमें प्रत्येक चरण उन्मेष के तार की एक एक खूँटी कसता चला हो।

यहाँ आकर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभात की कल्पना होती है। रात्रि के अञ्चल से बढ़ कर प्रभात के लोक में पहुँचते जन अभियान का चित्रण दो रङ्गों में स्पष्ट ही बँट गया है।

फिर जागरण की झङ्कार और तैंतीस कोटि मुखी शेष की विकलता आती है, फिर एक सांस खींचने का सा सन्नाटा और सागर सामने आता है।

'या तो स्वतंत्रता लूँगा या मेरा शरीर सागर की लहरों पर होगा।' बापू कहते हैं और झुक कर नमक उठा लेते हैं। जनता के रुद्रघोष को अभिव्यक्ति मिलती है। फिर आंदोलन और दमन। विश्व युद्ध में भारत के तैंतीस कोटि जन कोटि कोटि कण्ठ हाथ तथा पग लेकर मिले और विरोधी सत्तायें काँप उठीं।]

घिरे धुएँ के बीच डगर पर लपटों का दल चला अकेला

पीछे उठते तूफानों की

छाया में सिर ताने

अँग अँग में हुंकार समेटे

दृढ़ पद विश्व बनाने

धूमिल पथ धूमिल क्षिति रेखा धूमिल संध्या की लघु वेला





आगे क्षितिज धुएँ से काला

अहरह उठतीं आहें

ऊपर नभ सुनसान खड़ा

है फैला सूनी बाहें

दूर पुकार रही है अह रह सागर की सिकता की बेला

आई रात पंख फड़काती

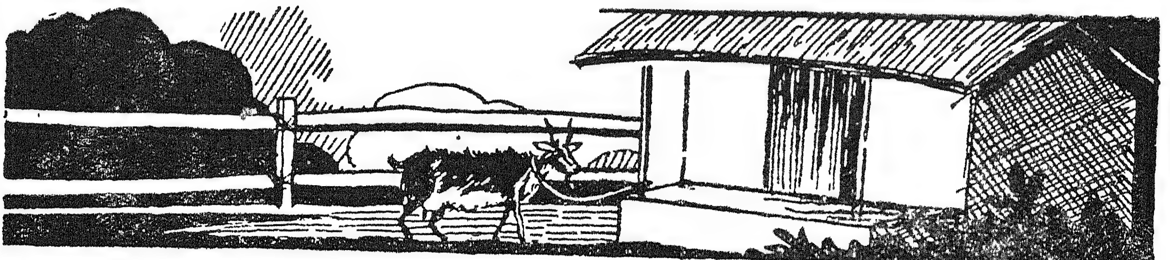
छाई सिर के ऊपर

धीरे धीरे उतरे तमके

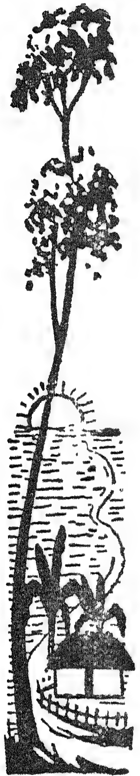
दूत धधकती भू-पर

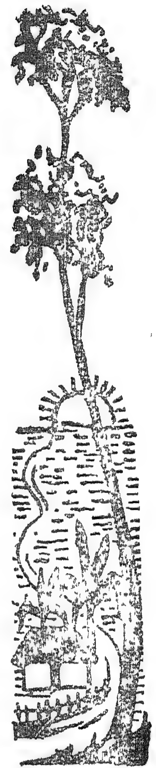
काली।छायाओं के नीचे चला ज्वलित दीपों का मेला

घिरे धुएँ के बीच डगर पर लपटों का दल चला अकेला



नभ में एक एक कर आये नभ के प्रहरी तारे
उगी जान्हवी नभ की छिटके फेनोज्वलित किनारे
रुकी एक युग पहले ध्रुव की राह गगन के पथ में
ध्रुव के संग गगन भी निश्चल लहरें सोईं जल में
पर चलने की तड़पन में व्याकुल तारों का मेला
लहरों के स्पन्दन की प्यासी है सिकता की बेला
सूना गगन रुद्ध दिशि दिशि है जड़ नभ की ये लहरें
इतनी झंझा उमड़ी फिर भी ऋषि नभ के क्यों हहरें
पर नीचे सिसकती धरा का ध्रुव यों हुआ न निश्चल
पथ जितना पुकारता उसको उतना उन्मुख प्रतिपल
ध्रुव भी क्षुब्ध सप्त ऋषि चंचल गरज रही गंगा भी
इतनी पीड़ा चीख रही काँपती रही वसुधा भी
आगे ध्रुव गांधी पीछे तारों का नव अभियान
उमड़ रहे नभ के कोरों तक नव प्रभात के गान

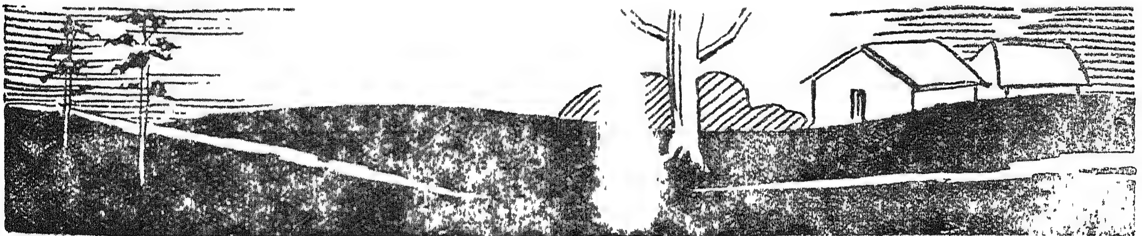




बापू आगे दृढ़ कर में लकुटी का सम्बल लेकर
पीछे न्यासी जन धावित छूटे धन्वा के शर

एक ओज से उन्नत सिर ऊँची मन की मीनारें
जिनसे टकरा छितरा जाती दानव की फुफकारें

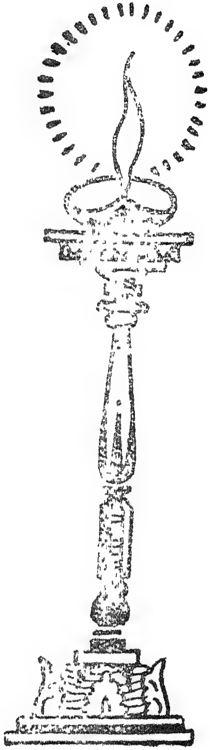
ऊसर की काली छाती में बिजली की सिहरन भर
पग के चिन्ह बिखर जाते हैं धूमिल धूसर पथ पर



ये विद्युत के चरण चिन्ह झंकृत है सारा देश
एक ! एक पग सुना रहा है नवयुग का आदेश

मौन किन्तु है मुखर चरण ध्वनि
बजती तैंतिस कोटि चरण में
बिखर यहाँ ज्ञानी पथ पर
पर अमर बनी जाती जन मन में



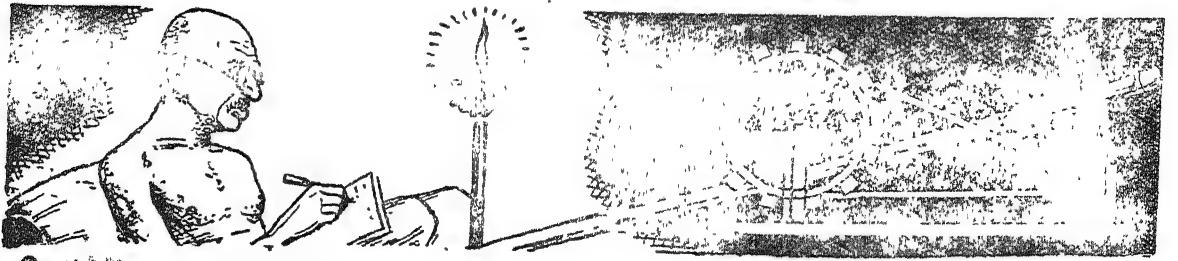


कितनी सूनी राह कि कितना सूना है आकाश
तारे कूदे तमस स्रोत में हो हतआभ हताश
अब सूने आकाश द्वार पर केवल पहरा शुक्रदेव का
बड़ी दूर पर कहीं मधुर प्रातःका मुखरित गान जग उठा
खड़े ज्योति में अलसाये से शुक्र विहँसते रहे एकपल
देख रहे थे अनिमिष हिलते नव प्रभात वाही उत्पल-दल
एक ओर से आतीं नव प्रभात की मधुर पुकारें
इधर प्रभात बिखेर फिर उठीं चरणों की झन्कारें

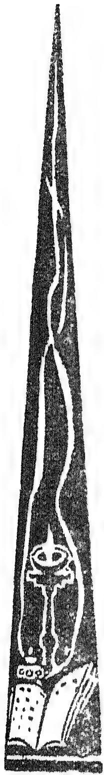
एक बार सुन वह पुकार फिर एक बार पूरब की
शुक्रदेव हट गये राह से खींच यवनिका नभ की

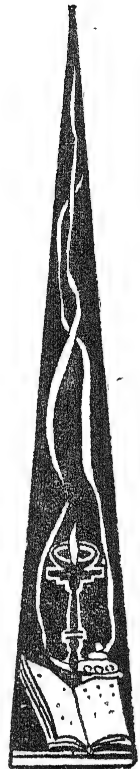
धीरे धीरे धुँधरारे कुहरे रंग गये विभा से
फीके ओष्ठ, अरुण पूरब के, नव-जागरित प्रभा से

धीरे धीरे मुसकानों के फूल खिले रतनारे
प्रात:के मधु चरण बज उठे प्राची दिशि के द्वारे



नाच उठीं पुतलियाँ उड़ा परिधान अरुण अम्बर में
सांध्य भैरवी घुल घुल जाती ऊषा के नव स्वर में





रंग दिया उषाने जन जन के मनको
रंग दिया उषा ने चरण चरण दलको
पीछे छोड़ साम्राज्य कालिमा का
बढ़ चले चरण प्रातः आवाहन को

पीछे प्रकाश आगे लाली छाई
असमी माथों पर जागी अरुणाई
मल दी उषा ने रागारुण रोली
मचली उमंग, मन मन में तरुणाई
भौंहों पर झुकी नीलिमा नभ-सर की
आंखों में [illegible] पुतलियाँ थीं तिरतीं
भौंहों की श्यामल छाया छाया में
कल्पनालोक की छायायें तिरतीं

मिट गये मग के शूल, फूल पथ में
बिछ गये [illegible] धूल अजर पथ में
माथे [illegible] सुमनदल की
झर गयी [illegible] चूँद मरण पथ में

गान्धी बोले जैसे असाढ़ बादल
बढ़ते पथ पर ये चरण चलें प्रतिपल
इस नव प्रभात की ज्योति बढ़े फैले
रंग जाय जग का मटमैला अंचल



ज्वाला-मुख के मनमें इस क्षण जागी
कण कण के मनमें उमड़ उठे आगी
संदेश फिरे उठ पड़ने मरने का
ध्वनि उठे पवन में शुभ स्वतंत्रताकी

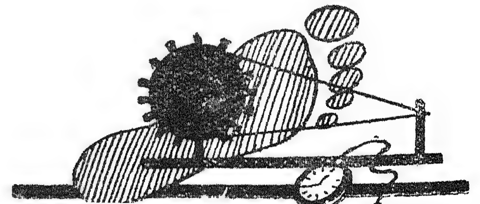
जब तक न स्वतंत्र बने प्राणी प्राणी
इस पथ से फिरें न पग ये सम्मानी
सिर झुके दलित रह पराधीन ऐसे,
फिर लौट न सकें क्रान्तिके वरदानी"

फिर लिए हृदय में घूम फिरे कण कण
यह आग प्रलय की ये उन्चास पवन
यह उठी भैरवी प्राणो के प्रण की
बन गयी कोटि जन-मन का शुभ स्पन्दन

उमड़ गगन कूल
बहते अरुण फूल
नभ में उड़ उड़
फिरते अरुण तूल

किरण-करों से रक्त सुमन समेटती
चरण चिन्हारियों में जावक बिखेरती
द्वार से उषा गयी निहार नभ लालिमा
प्रात के दिवाकर के पथ अवरेखती

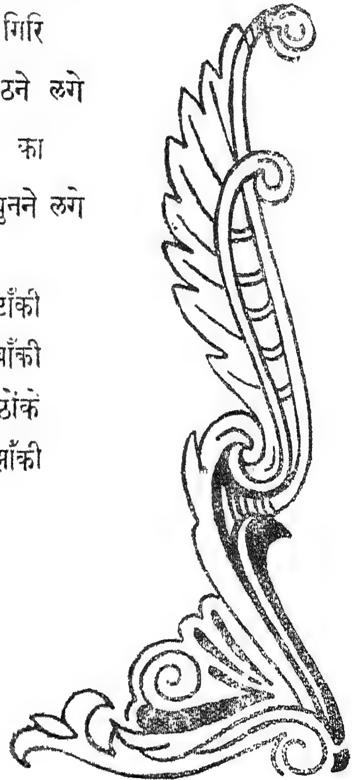


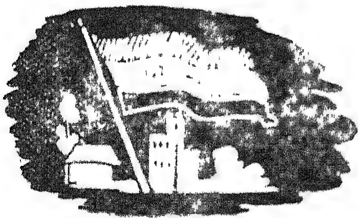


उग गये दिवाकर सहस्नार
खुल गये प्रभा के दुर्ग द्वार
उमड़ प्रकाश के दल अपार नभपथ पर
घिर चले सूर्य्य घेरे प्रकाश
ज्यों ज्ञान, ज्ञान का शुभ विकास
जग गया गगन का रुद्ध हास पावक-स्वर
[illegible] पथ पर चलता प्रकाश
शतदल-दल पर झरता विकास
जग गये ज्ञान-पथ-तार तार पावक स्वर

देख वह रूप तेरा ज्वलित हिमाद्रि शृंग
गंगा-सिन्धु जल तट छोड़ बहने लगे
पीछे शून्य स्तब्ध मरुवीणा के अछोर तार
गूंज गूंज प्रलय की गुहार करने लगे
वीर नभ शून्य में उठाये सिर खड़े गिरि
[illegible] [illegible] हिला भूमि छोड़ उठने लगे
सिर पे उठाये भार भारी पराधीनता का
[illegible] [illegible] [illegible] शेष सिर धुनने लगे

एक एक पग एक एक टाँकी
गढ़ दी तुमने मानव मूरत बाँकी
सिर तानें, बाहु उठाये खम ठोंके
नभ चीर खड़े मानव की नव झाँकी





छाती में भर उन्चास पवन के दल
दृढ़ मुष्टि खुले दृग पानी से छल-छल
ज्वालामुख के शृंगों पर झुकते ज्यों
करुणा-पूरित असाढ़ के नव बादल

देश देश के कोण कोण में
ध्वनित चरण ध्वनि भारी
घर घर में बिजली की आहट
चलने की तैयारी
साँस रोक कर खड़ीं दिशायें
क्षितिज लहरियाँ निश्चल
आँखों के आगे प्रकाश का
लोक विहँसता झलमल





उस पार चमकता प्राणों का दीपक
इस पार विकल थे प्राण दूर दीपक
पथ बीच अग्नि दुर्गम मरण घाटी
पर बुला रही ध्वनि शुभ स्वतंत्रता की
पृथ्वी में फट पड़ने की तैयारी
अब गगन टूट पड़ने की है बारी
हैं बन्द विकल ये द्वार घोर नभ के
रिरियाती मरण पुकार पार नभ के



आँधी का पालापन नभ के मुख पर
व्याकुल झंझा के नयन गये हैं भर

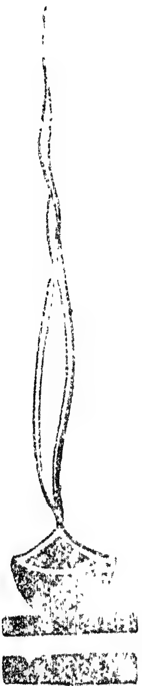
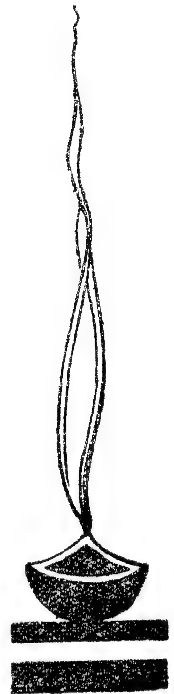
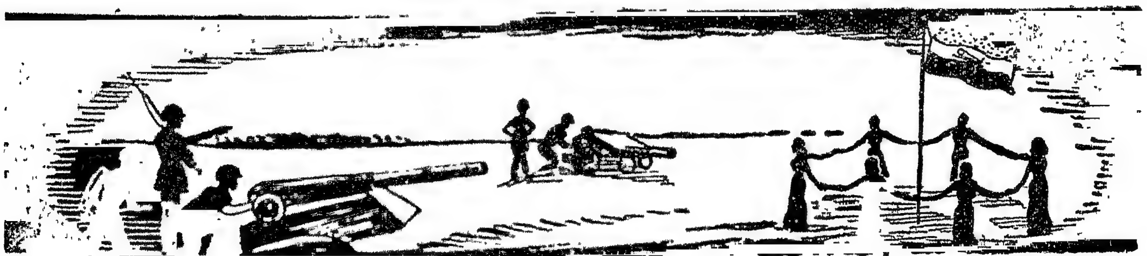
सामने अब सिन्धु-लहरें और गर्जन
आ खड़े साथी विकल ले प्राण कण कण

सामने गुरु घोष सागर का अमित उद्रेक
और पीछे भरी प्राणों की अविचलित टेक
माँगता सागर रहा अभिव्यक्ति गर्जन ले
और पीछे देश करता था। केवल एक

'क्या हमारी वेदना यों ही रहेगी भ्रान्त
और [illegible] तक रुक होते [illegible] हम अशान्त
दो हमें अभिव्यक्ति खुलने दो मुँदे ये द्वार
और खोले कण्ठ हम बन जायँ क्यों न अशान्त

गरजने दो हमें भी छिटका लहर से प्राण
और हँसते छातियाँ तने अभी पाषाण
हमें या तो टूटने दो या घहर गिरने
और क्यों हूँ दो हमें इस वेदना से त्राण

"त्राण दो [illegible] तो भी उमड़ उठते रोष
सामने [illegible] माँगा था मिटा सन्तोष
विश्व में अभिव्यक्ति प्राणों को मिले जन को
[illegible] नभ में [illegible] पर उठाता घोष

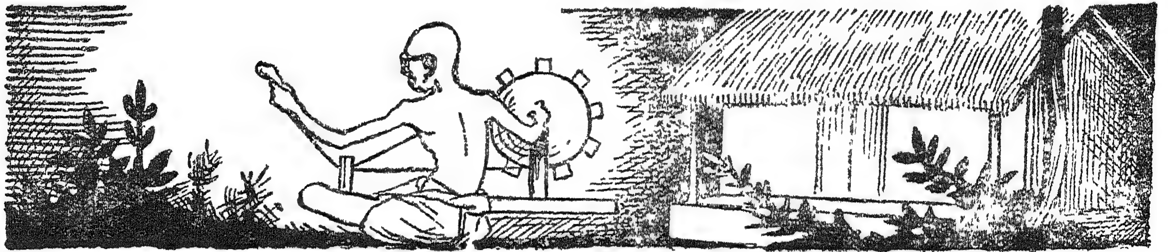
खुल चले युग से रुँधी यह राह नवयुग की
और गिर झर जायँ प्राचीरें पुरा युग की
इसलिए ही तो चला मैं चीखता पथ पर
मुक्त हो जन की दबी आवाज युग युग की

अब न लौटेंगे चरण ये पुनः इस पथ पर
प्राण ये सन्देश लेकर उड़ेंगे सत्वर
मैं मिटूँगा गूँज बनकर दलित प्राणों की
और सूनी देह होगी क्षुब्ध लहरों पर"

कहा बापू ने बढ़े फिर चरण मानी
छोड़ पीछे क्रान्ति की बनती कहानी
सिन्धु की लहरें सिसकतीं हटीं पीछे
छोड़ सिकता पर रुदन की श्लथ निशानी

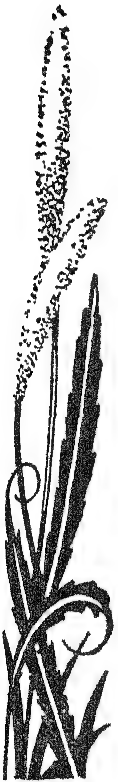
क्षितिज की लहरें तड़प कर फिर हुईं स्थिर
और मचली शान्त नभ में वायु अस्थिर
उठी सूनी एक क्षीण पुकार नभ में
और तट पर गरज कर बिखरी लहर फिर

टेक घुटने उठा बापू ने लिए कुछ कण नमक के
और ज्वालामुखी शत् शत उमड़ अग्नि उछाल भभके
हाँफता आ गिरा चरणों पर महासागर विश्रृंखल
टूट तोरण गिरे होकर ध्वस्त उन्नत नील नभ के



एक मन्वन्तर गया, मनु-पुत्र ने अभिव्यक्ति पायी
प्राण की पहचान व्याकुल वेदना की दृष्टि पायी
और लेकर विश्व की नव-मुक्ति का संदेश निर्मल
कालिमा पर हुई शीतल बिजलियों की फिर चढ़ाई

फिर बढ़ा जन का उछलता सिन्धु
चूमने दृढ़ लक्ष्य का पूर्णेन्दु
ओह कितनी शान्ति अचल विराग
गान प्राणों का छिड़ा जब फाग
खून का, संगीन की कटु तान
पर अचल के अचल जागृत प्रान





तुम लिये वरदान जन में घुले विजयी वीर
साँस जनता की गयी बन वज्र की प्राचीर

तन गयी फिर मानवी प्राचीर
फहरता ऊपर रहा ध्वज धीर
झुकी भौंहें दृष्टि स्थिर अविजेय
चढ़ी भौंह कमान पर स्थिर ध्येय
और बलते शान्त ज्वाला जाल
से दमकते रहे उन्नत भाल
फड़कते थे होंठ, लहर वितान
उछलती थी फूल सी मुसकान





भिंचे होंठों में बँधा आवेश
तना हिमगिरि शान्त वक्ष प्रदेश

शान्त हिम की राशि में अविजेय
रही जलती चेतना अज्ञेय

मुट्ठियों में बाँध व्याकुल प्राण
पद किये दृढ़ स्थिर बने पाषाण

जूझने फिर लगे प्राण अधीर
उठी विद्युत शान्त नभ को चीर

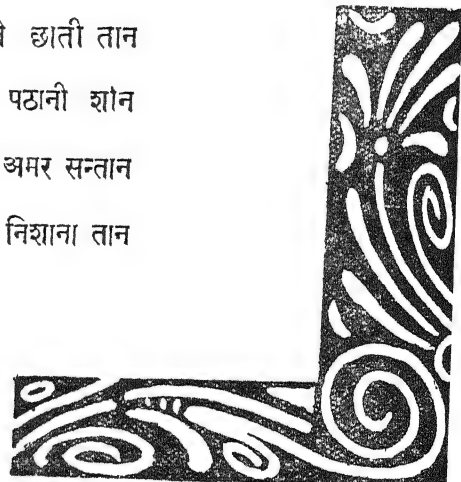
फिर चला जन का महासंग्राम
चलीं दुर्मद गोलियाँ अविराम

लाठियों से चूर रक्त-स्नात
खुँदे टापों के तले मृदुगात

लक्ष लक्ष लिये प्रबल प्रतिकार
लाँघते ही गये काले द्वार



अहिंसा की शक्ति प्राणों का अपूर्व विकास
क्रूर सरहद के पठानों ने किया विश्वास
और हिंसक से अहिंसक बने छाती तान
याद पेशावर, न भूलेगी पठानी शान
अरे ये गढ़वाल के सैनिक अमर सन्तान
उलटकर जो खड़े गोरों पर निशाना तान

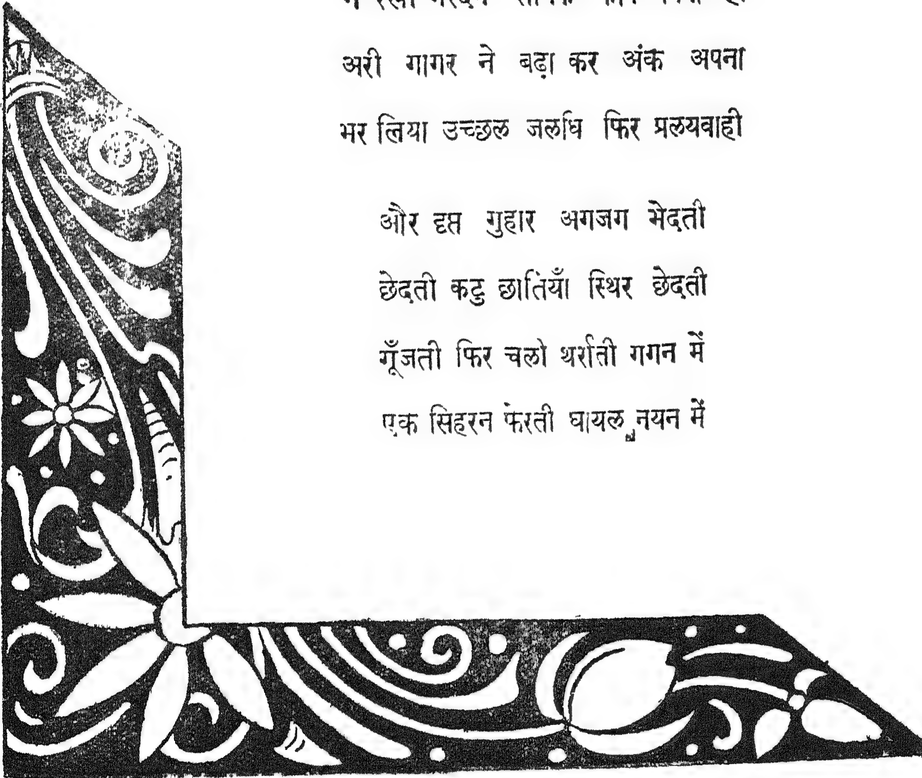




अरे आत्मा की खड़ी मीनार
अन्त तक न गिरी न रुके प्रहार
मोर्चे फैले कि पथ पथ पर
चरण बढ़ते ही रहे तत्पर
दौड़ती ही रही व्याकुल जान
बिछा पथ पर रक्त की पहचान
टूटते ही रहे गिरि-पाषाण
सिन्धु उठता रहा लिए उफान
दिशा फटती रही नभ हत-ज्ञान
जूझता ही रहा जन अभियान

दमन की बलि की शिला, जन के सिपाही
ने रखी गरदन तनिक काँपे बिना ही
अरी गागर ने बढ़ा कर अंक अपना
भर लिया उच्छल जलधि फिर प्रलयवाही

और इस गुहार अगजग भेदती
छेदती कटु छातियाँ स्थिर छेदती
गूँजती फिर चली थर्राती गगन में
एक सिहरन फेरती घायल नयन में



चले नीचे लक्ष चरण सहास
हेरते अभिव्यक्ति नवल विकास
विश्व की दुर्मद कँटीली राह
उमड़ता फिर चला अजर प्रवाह
रक्त में पहचान अपनी छोड़ता
धूल पर पग छाप अपनी छोड़ता




विश्व भर की लड़ रही जनता
खून से लथपथ हुई जनता
राह राह उमड़ रही जनता
मोर्चों पर झुकी श्रो जनता

तान लो फिर छातियों पर तीर
घोष के, गरजो गगन घन चीर
साथ तेरे आज ले सन्धान
खड़ा कन्धे भिड़ा हिन्दुस्तान

विश्व-युद्ध में कोटि चरण धर
कोटि बाहु शतकोटि प्राण भर
खड़ी हुई जनता की सेना
कण्ठ कण्ठ में ज्वलित गान भर



तेरहवाँ सर्ग

[जिस समय भारत जूझता हुआ अपनी स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहा था उस समय विश्व भर की जनता पर साम्राज्यवादियो, फासिस्टों, नाजियों तथा प्रछन्न आदर्शवादियों का सम्मिलित आक्रमण हो रहा था।

यहाँ हमें जनता के संघर्षों के इतिहास का भी स्मरण कर लेना है। इतिहास की धुयें से भरी घाटियां अस्त्रों की झनकार को तो द्विगुणित कर देती हैं किन्तु जनता की चीख वे कुहरों की जीभ बढ़ा कर पी जाती है। बड़ी बड़ी दूर तक फैली छायाओं की चलती तसवीरों में इतिहास के पन्ने चित्रित हैं जहाँ जनता की कोई भी राह नहीं उगती।

फिर आता है निरन्तर संघर्ष का युग और जनता के शूकर (बाराह भगवान) द्वारा अपनी पृथ्वी का संस्थापन होता है।

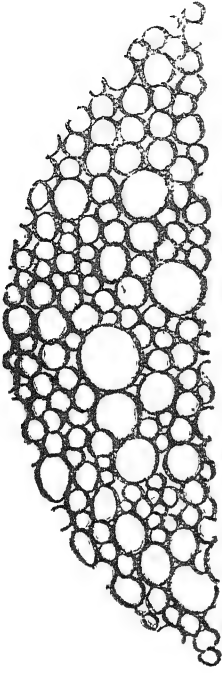
सत्तायें क्रुद्ध हो जाती हैं। आक्रमण होते हैं, न्याय ताख पर रखकर शांति के ठेकेदार ताकते रहते हैं। एक एक कर इटली जर्मनी, स्पेन अबीसीनिया चीन गिरते हैं, पर लड़ते रहते हैं। भारत को इस किस्म की जिन्दगी का अनुभव है। वह हर हार को अपनी हार समझता है।

महायुद्ध--और भयङ्कर नाश छिड़ जाता है। पोल-चेक फ्रेंच गिरते हैं। जापान दौड़ता हुआ भारत के द्वार पर आ खड़ा होता है।

अब इस स्थिति में तो भागा नहीं जा सकता।

अरे निकलने दो जनता को
युग के मुँदे विवर से
अरे फूटने दो प्रकाश की
किरण तमस गह्वर से

तोड़ फोड़ बहने दो जन गंगा को हिम की छाती
अरे हटा लो पाश, साँस ले संस्कृति यह अकुलाती
दबा राह जनता की पंजों तले चला अभियान
यह अभियान नृपतियों का, सत्ताओं का अभियान



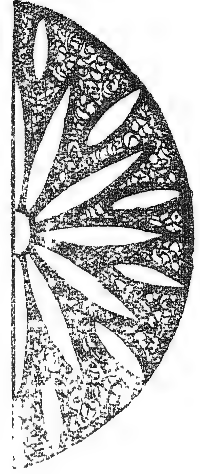
बढ़ता रहा तुमुल शस्त्रों के घोषों में पग रखता
ढलती सत्ता की दोपहरी में सूरज जब ढलता
जिसकी झुकी धूप में चलते घोड़े हाथी पैदल
झण्डों चन्द्रातप भालों की छायायें हो विह्वल
लम्बी से लम्बी हो कोसोंतक प्रसरित हो जातीं
छोड़ यही छाया इतिहासों के पन्नों पर जातीं

छोटे बौने नृपति और इतना लम्बा इतिहास
करते आते ये इतिहास महत्ता का उपहास
बोझिल कुम्भकर्ण सी छाया में उमचुम तम स्नात
डूब गयी अस्तित्व लिये जनता की उज्वल पाँत



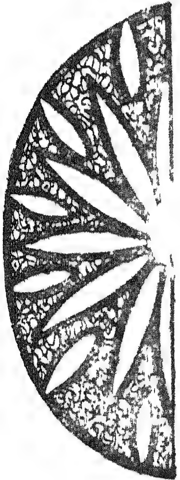
बार बार नीचे से ऊपर आ आकर भी
जनता पा न सकी पैरों के नीचे पृथ्वी
अगम उछलता क्रुद्ध सागरावर्तन गर्जन
उछल उछल बुझ गये लहर पर प्रभ प्रकाश कन
क्रुद्ध थपेड़ों से टकरा टकरा कर जल में
डूब गये कितने प्रयत्न सागर के तल में
जनता पिसती रही चीख ओठों में बाँधे
और मरण पर उसके झुके न झण्डे आधे
जैसे बर्षा के प्रवेग में ऊब ऊब कर
बिल के चूहे मरते जल में डूब डूब कर





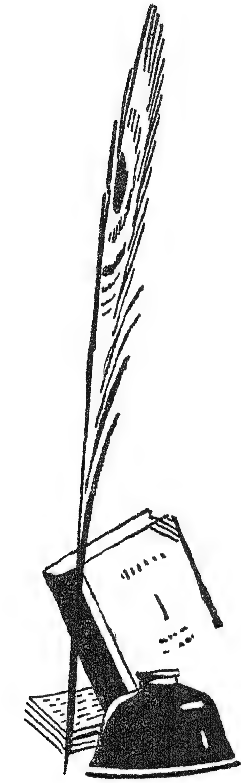
वैसे ही उस युग की जनता के भी ऊपर
रहा हमेशा लहराता सत्ता का सागर
साधे दुर्बल साँस भार गुरु ले सत्ता के
हिले बिना ही खड़े शेष उन्मन जनता के

निकली पृथ्वी फाड़ सिन्धु की लहरें उच्छल
साँस एक भी ले न सके जन-शूकर विह्वल
पृथ्वी स्थापित हुई क्रोध के बीच सिन्धु के
फिर पाताल भेजने लहर-समूह थे झुके
और गगन से गिरीं बिजलियाँ तड़प तड़प कर
कितने धूमकेतु चंचल हो बढ़े ज्वाल धर
एक छोर से दौड़ गया तूफान हहर कर
एक ओर से क्षुब्ध लहर से बहे द्वार-घर
टकरा लहरों से विद्युत से टूट टूट कर
कितनी बार गिरे जन के जयस्तम्भ धरा पर
पर चट्टानों से चिमटी जनता का सम्बल
ढहा न पल भर को भी हो लहरों से विह्वल
फिर तो युग की पराधीन जनता ने बढ़कर
रोक लिया छाती पर गिरता वज्र टूट कर
मार्ग में चला जनता का अभियान उबलता
सत्ता के वे दुर्ग यातना-यंत्र उलटता





रूस उठा गिर चूर जार का मुकुट खण्ड शत
बन्द द्वार फिर गिरे बढ़ी फिर छाती आहत
एक ओर से यूरप में खण्डित मुकुटों की
हाट लग गयी जगी दिवाली जन-दीपों की

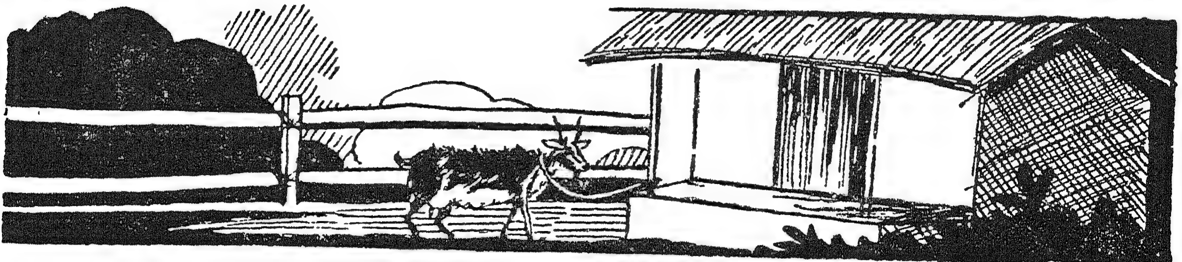


इन सबसे ही अलग दबी पहियों के नीचे
उठी पराधीनों की सेना साँसें खींचे
और हिन्द सागर के देशों में उठ उठकर
जनता ने विजयों को देखा उमग उमग कर
और लिये विश्वास झुक पड़े लगा छातियाँ
शेष हिले फुंकार खून की रँगी धरतियाँ
रक्त पूर्व के शान्त गगन में उछला गहरा
सना खून से जन का जयध्वज उठ कर फहरा

क्रुद्ध विरोधी सिंहों ने आकुल हो देखा
फैली जग के ओर छोर तक जन की रेखा
धूल उठाती, शृङ्ग तोड़ती बन्धन दलती
यह सेना पथ और छातियाँ दलती चलती
और उठाती अजर अभेद्य महाप्राकारें
उठती रहीं छातियाँ जन की सिन्धु किनारें



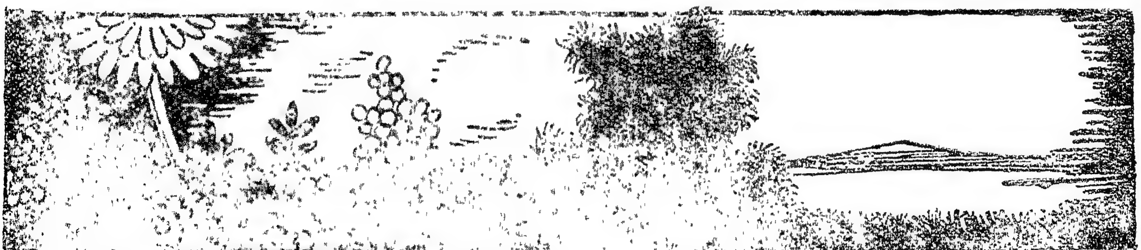
ले गर्जन उमड़ते सिन्धु का झंझा का स्वर
उमड़ा नवल वसंत। उड़ा सत्ता के पतझर

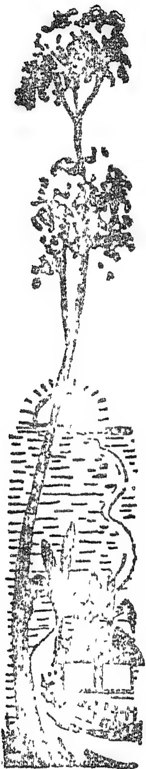


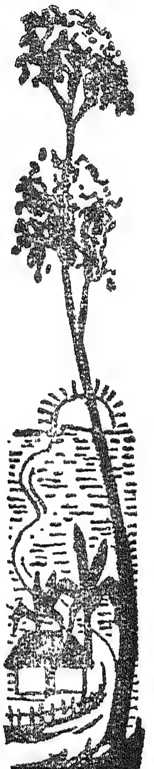
भारत में भी कोटि कोटि जन उमड़ उमड़ कर
लाँघ देहली 'जलियाँ' की घहरे पथ पथ पर

फिर साम्राज्यवाद, पूँजी की सत्ता आदिक
उठीं बाँध कर द्वन्द्व घुमातीं शस्त्र चतुर्दिक
छिपा सत्य का सूर्य; उठे घन गहरे काले
बढ़ा मृत्यु-अभियान शीश पर बुर्का डाले
व्यक्ति-राष्ट्र का; संस्कृति का; बहु-अल्प मतों का
बढ़ा राक्षसों का दल देता जग को धोका
और तमक कर वज्र चले सत्ता के फेंके
'आह'—धरे छाती जनता ने घुटने टेके
उठने के पहिले ही तड़पी फिर चल विद्युत
जन-प्राचीरें हिलीं, भूमि पर गिरा भूमि-सुत

लिये भीड़ नृशंसकों की तैर रक्त अथाह
बढ़ा ड्यूसे रोम को, रंग रक्त से ही राह
बढ़े काले हाथ काली रात थी असहाय
घोंट दी गरदन नये जग की न निकली हाय
उठे हिटलर से लुटेरे छातियाँ फिर छेद
जर्मनी की भूमि खूनी पैर सिर की गेंद
एक धक्का गिरी ज्वलित मशाल भू पर छूट
धुयें में दम घुटा ज्वाला का, मची फिर लूट





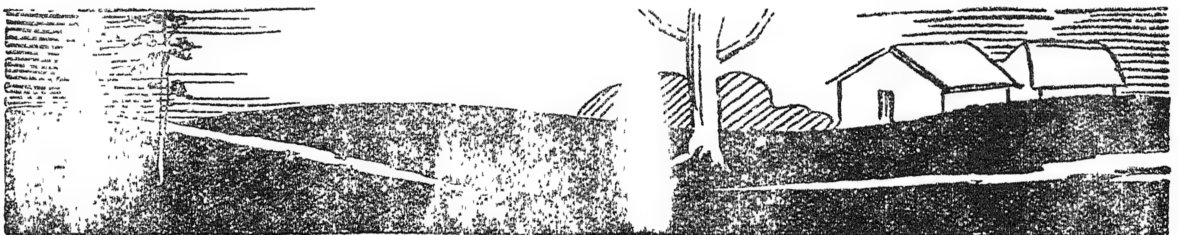


और आया दूसरा जब प्रात कम्पित गात
देख ठहरा विश्व जन की लाश रक्तस्नात
बढ़ा खूनी पैर फिर खूँ से भरी संगीन
भोंक दी जापान ने लाचार चीखा चीन
आग की उस बाढ़ में जनता बनी निरुपाय
और जन का स्वर्ग [illegible] अपहाय
एक एक पुकार -- [illegible] नत शीश पथपर फेंक
चीन में लाचार जन ने दिये घुटने टेक

स्पेन में फिर चला फ्रैंको पद बढ़ाता
पद कि चलता चक्र सा धरती हिलाता
और जन ने मृत्यु सम्मुख ताल ठोंकी
गति प्रलय की छातियों के द्वार रोकी
मिट चली तिल-तिल कटी जनता गुमानी
पत्थरों पर देश के लिखकर कहानी

त्याग की, बलिदान की, उत्साह की स्थिर
खून से आंके, बिछा भागी सहस सिर
एक एक हुंकार गिरे सिर एक एक कर
लगा शीश का ढेर रक्त से सिक्त धरा पर

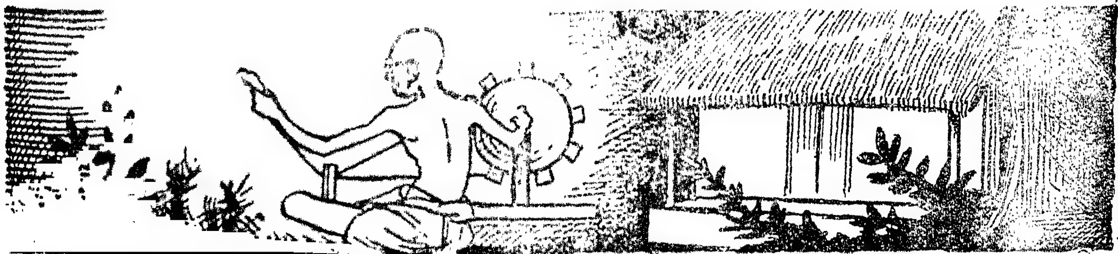
बलि की लाल देहली पर चीखे जनता के प्राण
बंधे बन्धनों में भारत के तड़प उठे थे प्राण



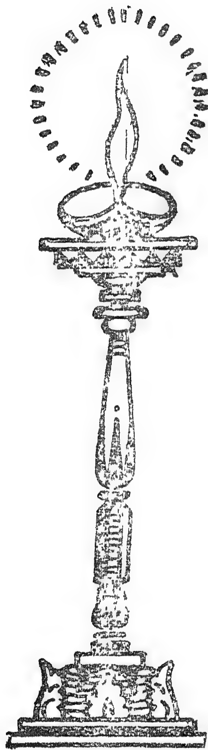
अरे क्या क्या मिटा है क्या क्या ढहा
अरे भू पर रक्त कितना है बहा
याद है वह जर्मनी की लौह कारा
छिदी छाती पड़ा 'टोलर'* जहाँ हारा
याद है स्पेन के कवि लोरका† की
अरे बिछुड़े दलित जनके अमर साथी
सैकड़ों टोलर सहस्त्रों लोरका
झूलते गरदन बँधे, झण्डा झुका

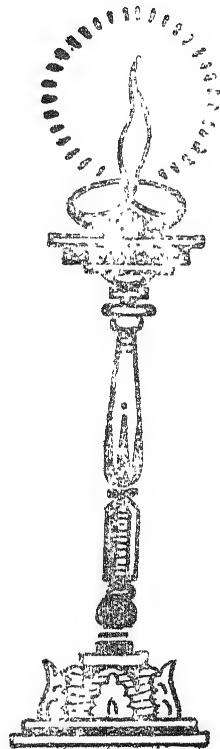
धूम घिरे, खण्डहर हुए जन के मोर्चे पर
लिये क्षुब्ध की हूक खड़े आ हुए जवाहर
याद अरे वह पेरिस की धूमिल सी बेला
जब वह स्पेनिश मन्त्री आकर पास अकेला
बोला कन्धे थाम मदद दो मेरे भारत
अब न उठ रहा घोष छातियों से इन आहत
डूब रहे हम घोर तमस आ रहा उछलता
बुझने को है दीप ज्योति का अब तक जलता
बम फटते धरती बान अग्नि कण झर झर
खड़े जवाहर आहत से चीनी जन पथ पर
दबा मुट्ठियाँ दिल देखते रहे चिन्तापर
चमक रही विद्युत में डरता हत निराश नर

* अर्न्स्ट टोलर जर्मनी का कवि अन्त में जेल में मरा।
† लोर्का-स्पेन का कवि - मृत्यु-दण्ड।



और मिट रही इतने दिन की जोड़ी थाती
खड़ी जान भारत की ओठ दबा अकुलाती
फिर सत्ता का नग्न नृत्य टनटन घण्टारव
विश्व-युद्ध प्रारम्भ, गिरा नीचे पोलिश-शव
चेकों के लघु प्राण बूट के नीचे आकुल
अरे पुकारा चीख जवाहर ने हो व्याकुल
उत्तर--खल खल हास हँसी सत्तायें उन्मद
बढ़ते रहे रक्त से लथपथ दैत्यों के पद
काम न आया धान में जनता का सम्बल
एक फूँक में बुझा दीप पेरिस का विह्वल



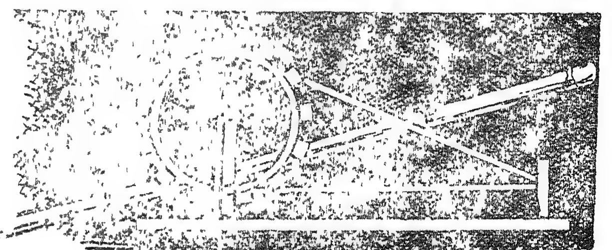


पूरब में पत्तों से मोर्चे बिखरे भरभर
ढेर बन गये, बढ़े बुद्ध के शिष्य चरण धर
अराकान से टकरायी फिर उठ हुंकारें
लगी क्षितिज से उठने क्रन्दन भरी गुहारें
भारत का पथ पटा हड्डियों से हो उजला
क्रोध धमनियों में भारत के उछला उबला

एकाएक तोप के मुँह हुंकार सँभाले
घूम गये पश्चिम से पूरब ज्वलित आग ले
और रूस की छाती पर बढ़ते घर घर कर
चले टैंक मोटर दस्ते, नभयान शीश पर



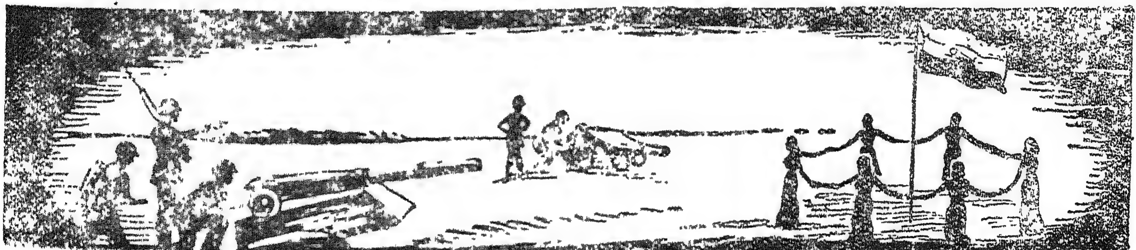




जन का अन्तिम दुर्ग प्राण की अन्तिम थाती
खड़ा हो गया लगा प्रलय-झंझा में छाती
बार बार हिटलर के विद्युत-वाहक टूटे
पर दांतों में अड़े प्राण जनके कब छूटे
और भयंकर आघातों में उठ उठ गिर गिर
रही पाँत जनता के बलकी झंझा में स्थिर
एक ओर हत चीन, रूस जूझता मरण में
अट्टहास कर रहीं शक्तियां दुर्मद रण में
क्या उठता जन-सूर्य्य चू पड़ेगा सागर में
डूब जायगा क्या नव-वंशी स्वर हर हर में

इन ढहती दीवारों के हित
आज उठा हम बाँहे
उठ न सके बैठे ही
सुनते रहे डूबती आहें

बैठे रहे रात भर तट पर
चलती रही रात भर झंझा
दुर्बल मन की लाचारी पर
हँसती रही रात भर झंझा



आ आकर नभ के आमंत्रण

लौट गये दे क्रुद्ध थपेड़े

किन्तु प्राण के घन तारो में

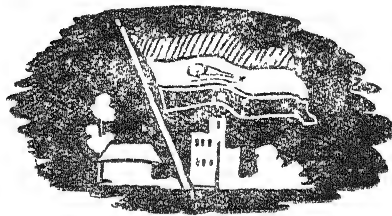
उलझी रही रात भर झंझा

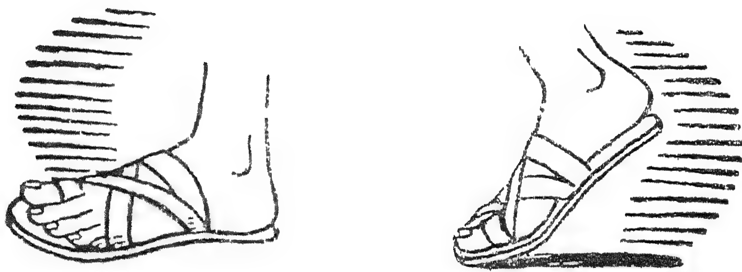
जग की झंझाओं की भूखी

झंझा मन की किन्तु बन्दिनी

उमड़ उमड़ रह गयीं

द्वार से रोती फिरीं रातभर झंझा





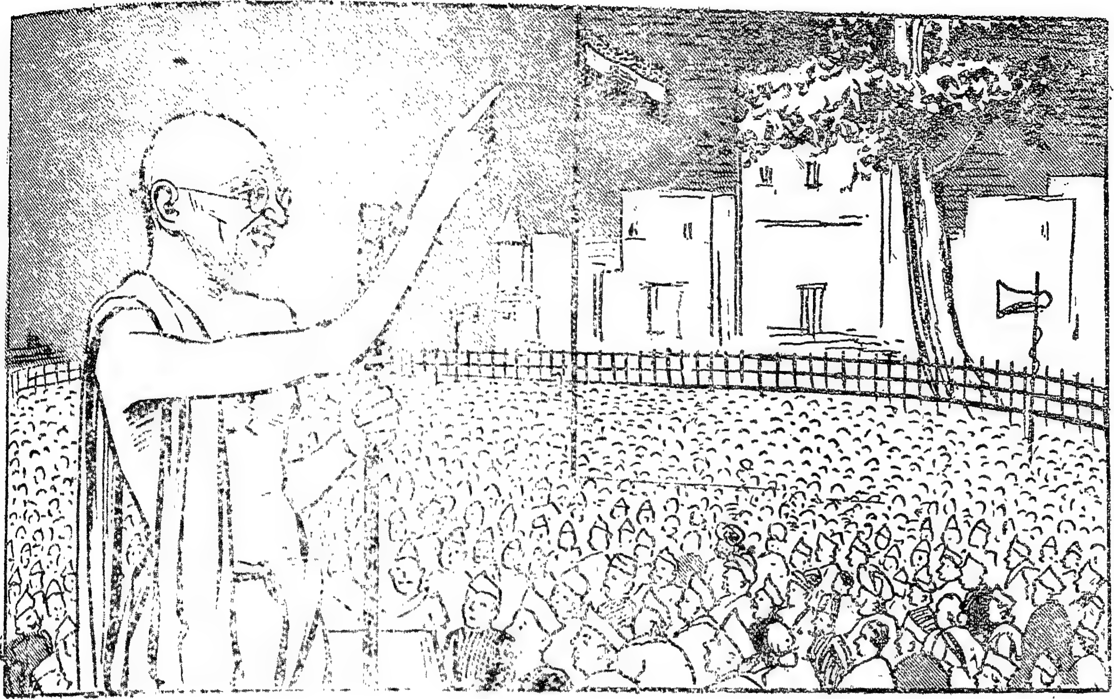
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त उत्तिष्ठ परन्तपः

तुम मलय की राह रोक खड़े युगों से
हटो आवे वायु पथपर गन्ध भर

किन्तु एक इनकार लक्ष इनकार कोटि इनकार
करती रही बृटिश सत्ता जब शत्रु खड़ा था द्वार

स्वर्णमय आगत करें हम क्या उठा स्वागत तुम्हारा
जब कि लुण्ठित आज है सम्मान ही आहत हमारा

आह पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण तक
महाद्वीप सा देश मग्न काले जल-तल में



चौदहवाँ सर्ग

[मानवता के शत्रु जलते कदम बढ़ाते, निर्माण के किसलयों को रौंदते विश्व भर में दौड़ रहे थे। एक एक जीवन के नाश पर भारत उबल पडता था लेकिन सिर पर बैठी सत्ता भी तो उन्हीं दानवों की संगिनी थी वह यह क्यों होने देती ?

अन्त में जापानी हमले सीमा पर होने लगे। भारत ने इसका प्रतिकार करना चाहा।

लेकिन सत्ता का एक उत्तर था—नहीं।

विनाश की घड़ी सिर पर हो और ४० कोटि सन्तानों का देश असहाय सा टैंकों, मोटरों और बूटों के पथ पर बिछ जाय !

मृत्यु शैय्या पर पड़े मानवता के कवि टैगोर बुझते दीपक की तरह भभक उठे थे—भविष्य का भारत यह सब भूलेगा नहीं ?—सब कुछ नष्ट हो रहा था लेकिन कवि का मनुष्य पर से विश्वास अभी भी नहीं हटा था।

बापू की ओर देखकर उस दीपक ने आँखें मूँद लीं और काले धुयें से बत्ती घिर गयी। इस धुयें में विश्व भर के खण्डहरों पर छाया धुआँ झलक उठा। बापू ने जन-समुदाय से कहा तुम ऐसे नहीं मर सकोगे। तुम मुक्ति की ध्वनि उठाओ क्योंकि आज चुप रहना मृत्यु को आमन्त्रण देना है।

'करो या मरो' जनता उठी।

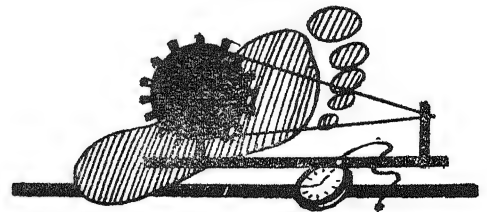
'भारत छोड़ो' पर सत्ता ने कहा 'नहीं'। फिर दीवारों में नेता घिर गये, जनता उठी फिर बिखर गयी। फिर देश पर एक भयंकर नकृति का महासागर फैल गया।

किन्तु एक इनकार लक्ष इनकार कोटि इनकार
करती रही ब्रिटिश सत्ता जब शत्रु खड़ा था द्वार

आ रही झंझा लिये हुंकार
खटखटाता शत्रु मेरे ! द्वार
सामने ही बढ़ा ज्वाला जाल
घूरता है अन्न का कटु काल
बढ़ रही संगीन छाती बीच
'डोन्ट हाउल' कह दिये मुँह मीच
हमी ने थे स्पेन पर आँसू बहाये
चीन के संग कदम हमने ही उठाये
अबीसीनी मरण पर हम थे तड़पते
हमीं चेकों के मरण पर थे गरजते
और खूनी चरण जलती आग झर
शत्रु पूरब का खड़ा जब द्वार पर
जब रही मिट प्राणरेखा देश की
कमाई आधी शती की देश की
उठ रही तब दीपकों की हाट है
आज यह जनशक्ति बारहबाट है
लड़ा सब तो क्या लड़ा जब इस समय
चुप रहे जन के सिपाही इस समय

† मत चीखो-इति चर्चिलः





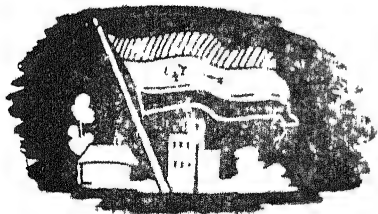
रात्रि अंत में भभका दीपक देख डूबती भोर
'अरे पापियो'! मृत्यु अंक से गरजे थे टैगोर
"आह विश्व के ओर छोर तक विष का कुहरा
फैल गया पश्चिम से पूरब नभ तक गहरा
अरे आज उठ बर्बरता का राक्षस पागल
फेंक सभी आडम्बर, दाँत निकाल, दौड़ चल
आज रंगा खूँ से चढ़ आया विश्व-द्वार पर
और क्रुद्ध धक्कों से ढह ढह गिरे द्वार घर
घोर सागरावर्तन—घूर्णित लहर जाल से
टकरा टकरा डूब रहे सपने प्रवाल से

अरी ब्रिटिश सत्ता वह दिन है नहीं बहुत अब दूर
तुम भारत की भूमि छोड़ने को होगे मजबूर
किन्तु अरी शतियों की धारा बहजाने के बाद
हम कर पायेंगे कीचड़ विनाश से तेरी याद

मैं सोचता रहा कि सभ्यता जागेगी पश्चिम में
यही एक विश्वास पल रहा था दशकों से मुझ में
खड़ा विदा लेने जब निकली हृदय चीर निःश्वास
देख विनाश ढह गया मेरा जन्मों का विश्वास
चारों ओर विनाश, खण्डहर की अँधियारी हाट
लगी हुई है साँझ हो गयी, भय से कंपित बाट"

सिर झुका लाचार कवि का मृत्यु की थी रात
रो दिये 'शाहजहाँ' । से झरे । आँसू-पात





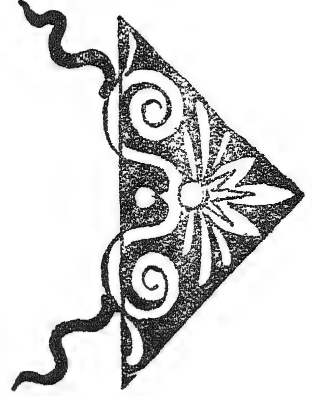
नयन में खिंच गया फिर उस लोक का मृदु रूप
छवि छिपा जिसकी खड़ा कवि की कला का स्तूप

चित्र हिल-हिल जा रहे घन-
धूप-लहरों में सजे जो
याद दीपक को सभी वे राग
मन्दिर में बजे जो

याद वे दिन जब कि घण्टे आरती के स्वर मुखर थे
याद वे दिन जब कि चरणों पर नयन के फूल झरते
याद वे दिन जब कि कम्पित दीपकों की पाँत में
दिये थे नभने कमल वे मानवों के हाथ में
याद वे दिन आह पुष्प मरन्द के दिन याद वे
याद वे दिन त्याग मधु उत्सर्ग के दिन याद वे
विजय के ध्वज से विडोलित प्रात बज जाते हृदय में
मधुर संध्या की नफीरी-ध्वनि घुली पड़ती मलय में
याद वे जय-घोष बादल से गहन-स्वन याद वे
याद वे गुंजित मृदंगम ताल खिन खन याद वे
उमड़ फिर आती उठी आलाप नभ की बीन में भर
बिखर जाते सिहर झर स्वर-पारिजात लहर लहर पर

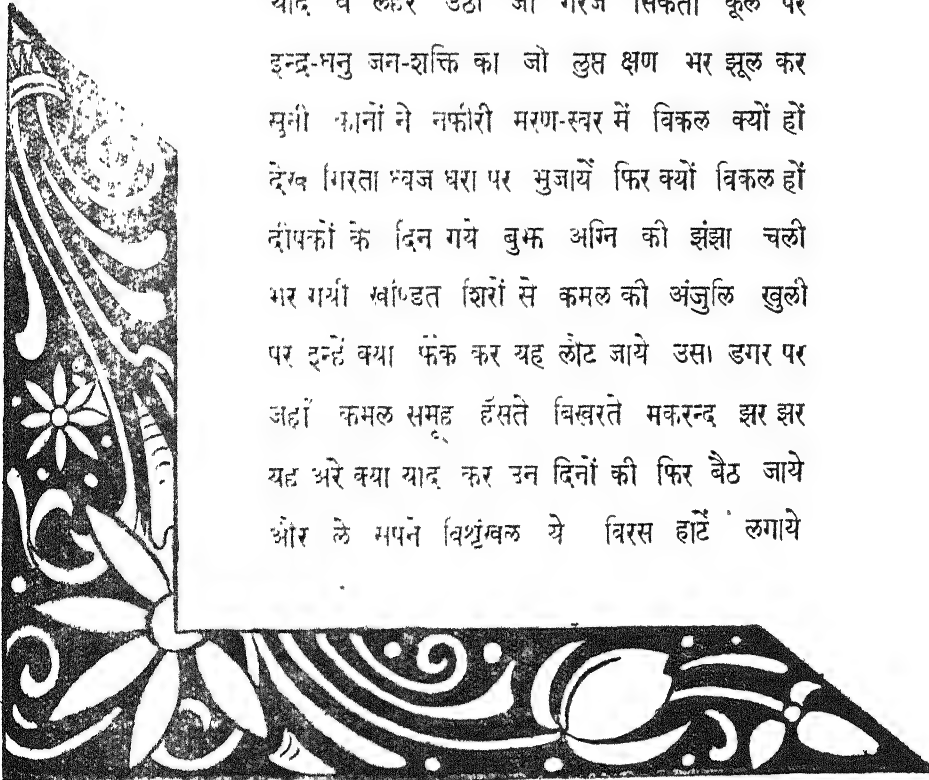
याद, मानव ने विजय के साज
पथ पर थे सजे जो
याद दीपक को सभी वे राग
मन्दिर में बजे जो

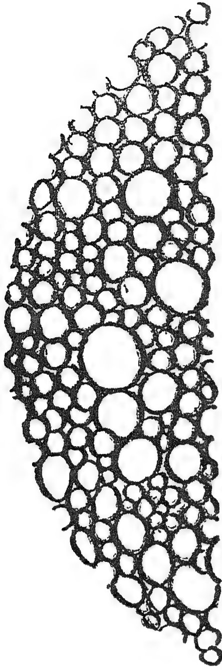
याद वे दिन याद मानव ने प्रबल घन सा उमग कर
माँग की थी मानवी-अधिकार की युग बाद जग कर
याद लगतीं बाजियाँ अनगिन सिरों की याद हैं
याद शत शत अर्चनायें भी सिरों की याद हैं
याद सागर की अनवरत चोट आकुल धरतियों पर
याद जन को ज्वलित आशास्तम्भ सागर-छातियों पर
याद नभ में डूब जाते चन्द्र की छबि याद है
याद मेघों से निकलते चन्द्र की छबि याद है



याद दीपक को मरण के
साज मानव ने सजे जो
याद दीपक को सभी वे
राग मन्दिर में बजे जो

याद वे लहरें उठीं जो गरज सिकता कूल पर
इन्द्र-धनु जन-शक्ति का जो लुप्त क्षण भर झूल कर
सुनी कानों ने नफ़ीरी मरण-स्वर में विकल क्यों हों
देख गिरता ध्वज धरा पर भुजायें फिर क्यों विकल हों
दीपकों के दिन गये बुझ अग्नि की झंझा चली
भर गयी खण्डित शिरों से कमल की अंजुलि खुली
पर इन्हें क्या फेंक कर यह लौट जाये उसी डगर पर
जहाँ कमल समूह हँसते बिखरते मकरन्द झर झर
यह अरे क्या याद कर उन दिनों की फिर बैठ जाये
और ले अपने विशृंखल ये विरस हाटें लगाये





आज मधुमय गान के स्वर घुँट रहे 'हूहू' हहर में
कोकिला क्या इसी से हो मौन इस काले प्रहर में
जिस हृदय ने सुने थे जयघोष आज थकित विकल मन
मरण का सन्देश——बजते कूच के घड़ियाल टन टन

और चलने के विकल क्षण में हताश पुकार
बन्द आँखें 'शाह' की फिर 'ताजमहल' निहार

किन्तु बुझता दीप बोला बुझेगा न प्रकाश
मनुज तुमसे अभी तक मैं हुआ कहाँ हताश

मैं यहाँ रुकता कहाँ हूँ

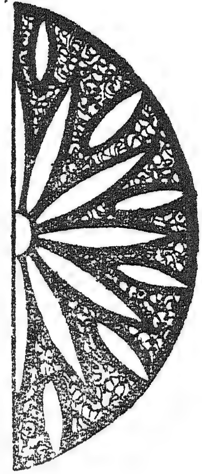


मानता हूँ घिर गया तम राह पर सुनसान जग की
और दीप प्रकाश के बुझ गये अन्तिम ज्योति भभकी
दीप मैं नव प्रात का हूँ अन्ध में बुझता कहाँ हूँ
मैं यहाँ रुकता कहाँ हूँ

मिट रही मैं मानता हूँ मानवी जग की कहानी
रक्त में लथपथ हुई इस राह की उजली निशानी
किन्तु मैं मन बीच रेखा स्वर्ण की मिटता कहाँ हूँ
मैं यहाँ रुकता कहाँ हूँ

देखता हूँ आ रहा हरहर चला पागल प्रभंजन
और कनकन जल उठे तन के, ज्वलित ये अग्नि चुम्बन
किन्तु मैं प्रहरी दिवा का प्रलय में झुकता कहाँ हूँ
मैं यहाँ रुकता कहाँ हूँ

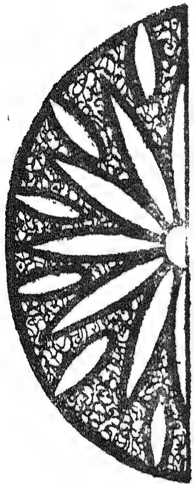




तुम्हारी ही ओर बापू देखकर अब दीप बुझता
और सूनी वर्तिका को घेर काला धूम उठता
धूम! यह है धूम वह जो खाइयों पर छा रहा
धूम! यह वह धूम है जो विश्व भर पर छा रहा
नाश का यह धूम है निर्माण के ढहते नगर पर
अन्ध का यह दूत बढ़ता आ रहा नभ की लहर पर

दिन दिन ढहते जाते मन ये
कसते जाते दिन दिन बन्धन
मुसकानों के फूल झर चले
लहरों पर बिखराकर क्रन्दन

इसी समय दूरागत ध्वनि सी धीरे धीरे उठकर
चली लपट फिर ज्योति उठाती तम में खोये पथ पर
ये संदेश के दीप तुम्हारे चल चल मचल उछल कर
धीरे धीरे तैर चले जीवन से, मृत्यु लहर पर

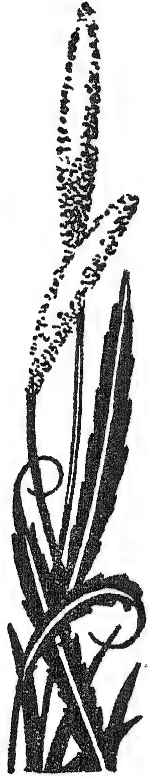
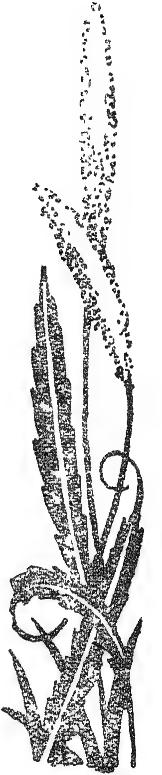


"तुम ऐसे ही मर न सकोगे
निशि के भय से झंझा से डर
गिरते पथ पर प्राण विकल झर
वे पतझड़ के पीले पत्ते काँप
रहे जो भू पर थर थर
झरते वे तो चलें विफल झर
भरते दिशि दिशि में झर रोदन
पर हे नव बसंत के वाहक
तुम ऐसे ही झर न सकोगे
तुम ऐसे ही मर न सकोगे



ये तुम ढाते हो छाती पर
नव संस्कृति के पुष्प चिरन्तन
अभी तुम्हें करनी अगवानी
शत मधुमासों के शत बन्दन

भरते रहें गगन में स्वर ये
मृत्यु-विनाश-प्रलय की टनटन
पर तुम हे विकास के स्पन्दन
यह असफलता भर न सकोगे
तुम ऐसे ही मर न सकोगे

यह समर्पण मृत्यु है यह युद्ध अपना नाश है
क्योंकि इस पथ पर कहीं न भविष्य का सुप्रकाश है

चीन लड़ता रहा ढहता रहा मिटता रहा कण-कण
कल्पना के लोक में नवप्रात उठता रहा क्षण क्षण

रूस पीड़ा सह रहा अभियान पथ पर रहा चलता
क्योंकि संस्कृति को नया वह जन्म देने में विकल था

स्वर्णमय आगत करें हम क्या उठा स्वागत तुम्हारा
जब कि लुण्ठित आज है सम्मान ही आहत हमारा

'देश अपना' सोच कैसे हम भरें उच्छ्वास मन में
जब कि हाथ बँधे मरण के दृश्य झूल रहे नयन में

इसलिए अब और नीचे ध्वज झुका सकते नहीं
हम रचें क्या विश्व खुद गरदन उठा सकते नहीं

हम यहाँ बन्दी वहाँ जनता झुकी संग्राम में
क्या हमारी शक्ति का फिर मोल जन-संग्राम में



इसलिए तम अन्ध हटना चाहिए
इसलिए यह बन्ध हटना चाहिये
आज बाहर शोर भीतर शोर इतना
इसलिए यह द्वार खुलना चाहिये

मुक्ति जन की छातियों की धार है
नकृति चिन्ता पर महार्घ प्रहार है
एक चोट, उमड़ पड़ा करते प्रपात
मुक्ति खुलना प्रात का नव-द्वार है
तुम हटो नव मुक्ति मेरे द्वार पर
तुम छँटो नव-प्रात रँगता द्वार-घर
तुम मलय की राह रोक खड़े युगों से
हटो आवे वायु पथ पर गन्ध भर

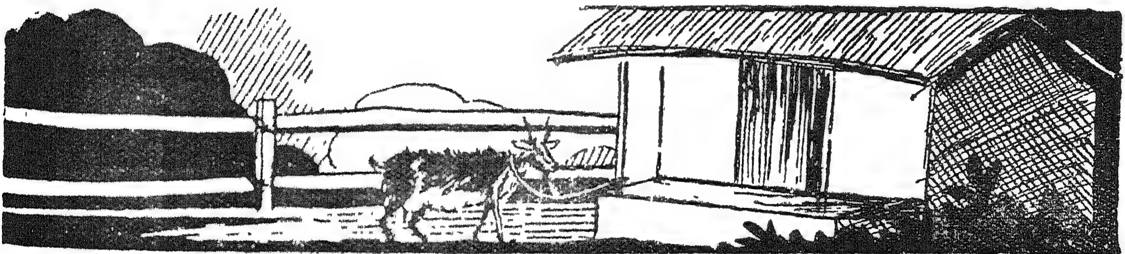




और तुम ओ कोटि जन उमड़ो नयी फिर शक्ति ले
यह न जीवन, जियो तो फिर प्राण की अभिव्यक्ति ले
नहीं, जीवन का भला क्या अर्थ है

आज मुक्ति बने हमारा धर्म हम उठते यहाँ
आज टकराना उमड़ कर धर्म हम रुकते जहाँ
नहीं गति का भला क्या फिर अर्थ है

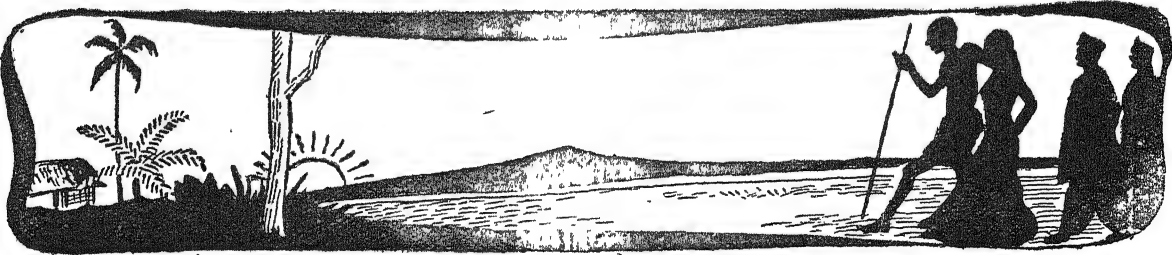
है हमें ललकारता शोषण धरा पर बारबार
भार ही जब हम न अपना सके हैं अब तक उतार
तो यहाँ फिर साँस लेना व्यर्थ है



'नहीं' फैला हाथ काले सामने
खड़ी सत्ता आ प्रलय फिर थामने
'नही' तुमको घेर कर दीवार में
लगी सत्ता दानवी संहार में
'नहीं' जनता मेघ सी उठ छा गयी
'नहीं' टक्कर बज्र की छितरा गयी
'नहीं' पथ पर खून के अंचल पसार
क्षुब्ध जनता शीश शत बिखरा गयी

'नहीं नहीं' का घोष लिए कालिमा सिन्धु फिर
उठा उमड़ता लिये संग उश्रृंखल लहरें
और पूर्व से पश्चिम उत्तर से दक्षिण तक
महाद्वीप सा देश मग्न काले जल-तल में
उच्छल सागर बीच लिए दुर्मद दीवारें
दिल्ली खड़ी एक बम बनकर व्यंग देश पर
जिसके सिर पर छाये घन कुहरों के बादल
नीचे काला सागर, केवल 'नही नहीं' स्वर
दैन्य महामारी अकाल की लहर पर लहर
आती ही, किन्तु सबसे ऊँचा नकृति स्वर
जीवनकी पहचान—लहर के झटकों से मिट
फूट जा रही बुदबुद के खाली अन्तर सी

———



पन्द्रहवाँ सर्ग

एक एक करके वर्ष बीत चले। नकृति के मेघ तनिक हलके हुए। जनता लाखों आहुतियों—दमन, झंझा, अकाल, बाढ़ और अपमानों की वेदियों पर चढ़ाकर हत सी ताकती रही। इसी समय गांधी बाहर आये।

देश की कोटरगत आँखें उनकी ओर घूर रही थीं। गांधी को 'बा' की मृत्यु भूल गयी और उन्होंने देश के गतिरोध के अन्त के लिए फिर जिना के द्वार खटखटाये। 'नहीं नहीं'—देश का अभाग्य अभी कहाँ दूर हुआ था।

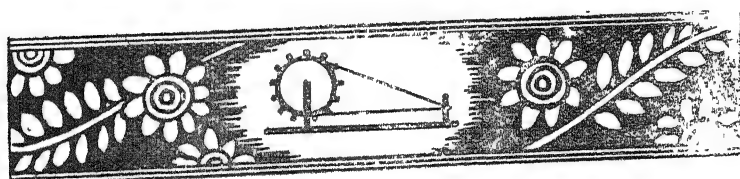
किंतु जनता हृदय में ज्वाला ले मरती खपती फिर उठी। पुराना प्रवाह फिर उमड़ा। किन्तु जब अकाल महामारी और मृत्यु का बदला लेना था तभी धर्म की तलवार छाती में आ घुसी और राष्ट्रधर्म छाती थामे जमीन पर आ रहा।

आज बापू नोआखाली के धक् धक् जलते वातावरण में टूटा हृदय लिए खड़े हैं और भाई भाई उद्देश्य का पथ छोड़कर परस्पर जूझ रहे है। प्रतिक्रियावादी शक्तियों के नीले पीले झण्डे धीरे धीरे उठ गये है और राष्ट्रध्वज खून में पड़ा पुकार रहा है।

टन् टन् टन् कर बीत गये फिर वर्ष प्रकृति के
धीरे धीरे मेघ बिखर फिर चले नकृति के
खुले सींकचे शून्य राह पर बापू आतुर
खड़े आ, रहे देख देश की मूर्ति भयातुर

साठ लाख जन जला ज्वाल में बंग भूमि हत
अब भी हाथ पसारे, भूखी जाने शत शत
सूखे नयनों के जल कब के ज्वाला में जल
गये, कोटरों में प्राणों सी आँखें चंचल

लाज बिकी हाटों में गर्वित ध्वजा झुक चली
यहाँ बिक गयी रूपे पर मुसकान सुनहली
हत अभिमानी देश लिये नत छाती विह्वल
बुझे जा रहे प्राणों के दीपक ये पल पल



भूली तुम्हें मृत्यु 'बा' की
सुन व्याकुल उठी पुकार
दौड़े गये खटखटाने फिर
बन्द जिना के द्वार
उत्तर 'नहीं नहीं' लौटे फिर देखा भूखा सागर
'भूख भूख' का स्वर बिखेर देता रह रह कर पथ पर

दहकती उस काल ज्वाला में जले शत लक्ष
झुलस कर काले हुए जन खड़े विश्व समक्ष
उठा सारा देश कढ़ फिर अन्ध गह्वर से
याद ले कटु उन दिनों की जब प्रलय बरसे
नयन फटे बढ़े हुए थे बाल मुँह खोले
खड़ा उठ भारत हुआ—बोले कि अब बोले
आग प्राणों में लगी होगी कहा सब ने
सामने से राह छोड़ी डर गये जग ने
एक ही बस नजर फेरी थी कि नभ डोले
लाल दुर्ग ढहा कि केवल साँस भर तोले
एक खींची साँस फिर हड़ताल, राहें शून्य
रँगे पथ, जन अड़े शत शत, शून्य सब कुछ शून्य
एक छोड़ी साँस हहरे पवन फिर उन्चास
उड़ गये जलपोत कागजपोत से हत आश
चली केवल साँस ही भर दिये बन्धन फेंक
सामने दिल्ली हिली फिर गिरी घुटने टेक
छातियाँ ताने, ध्वजा ताने, भुजा तोले
बोलने तुम जा रहे जलते नयन खोले
किन्तु बोले कहाँ तुम निकली करुण चीत्कार
गिरे छाती में घुसी ले धर्म की तलवार

गिरे भू पर खून से भर यह न जन की हार
अगर यह हो तो सुखद वह प्राण का त्योहार
किन्तु बन्धन तोड़ कर बढ़ प्रलय-धारा पार
कट चलें सिर मनुज के इस धर्म की कटु धार

भूख से, सन्ताप से, फिर
पतन और अकाल से
यही क्या थी सीख ली
जन ने जले बंगाल से

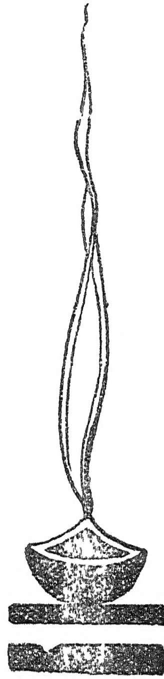
यह हुआ होता कि मन्दिर मस्जिदें सब कुछ ढहा
उठा होता क्षुधित मानव राह पर घन सा घिरा
यह हुआ होता कि पथ ये नाश का पहिचानते
यह हुआ होता कि बदला अस्थियों का माँगते
मृत्यु का, अपमान का नंगी हुई इस देह का
यह हुआ होता कि बदला 'भूख' का ये माँगते
यह हुआ होता कि कहते ये 'भुजा हमने उठाली
अब सँभालो तुम हमारी भी, बहुत हमने सँभाली',
खड़े तो ये हुए छाती की महत् प्राचीर में घिर
बीच ही में क्यों अरे गर्वित पताका ही झुका ली
आह ले हुंकार उठा समुद्र जो छितरा गया
आँसुओं औ चीख के सँग रक्त भी बिखरा गया
राष्ट्रधर्म पद पर लुण्ठित ध्वज गिरा धरा पर
उठा क्रूर हुंकार, प्रतिक्रिया चली राह पर
नीले पीले झण्डों के सिर फिर हो ऊपर
वर्ण जाति के रंग बनाते फिर पृथ्वी पर
विह्वल राष्ट्रधर्म भू पर क्षण भर को लुण्ठित
देख, उमड़ आये शृंगाल के दल उत्कण्ठित

और बापू तुम खड़े हो घोर पीड़ा में झुके
स्वतः चालित चरण ये क्यों आज क्षण भर को रुके
सामने ही प्राण छिटका अभी तो लहरें गयीं हैं
और पथ को रक्त से रंग, लाश बिखराती गयीं हैं
वे गयीं पर शीश उन्नत भूमि पर ही छोड़ कर
वे गयीं पर राष्ट्र का ध्वज छिन्न खूँ में छोड़ कर
हार कर ही वे गयीं हैं आज बाजी हार कर
चीखता है देख तुमको ध्वज पड़ा यह राह पर

'क्या यहीं है स्थान मेरा रक्त में इस राह में
मैं कहाँ का कहाँ आकर पड़ा क्षुब्ध प्रवाह में
याद वे दिन जब कि शत शत कण्ठ एक पुकार ले
अर्चना करते विजय की राह पर झंकार ले
याद वे दिन राह पर काँटे छिदे पग थे अड़े
द्वार पर जलियान के बाहें उठा हम थे खड़े
और आयीं गोलियां मैं फहरता तुम गरजते
छिदीं छाती खड़ी प्राण उफान ले ले मचलते
और मैं उठता रहा उड़ता रहा
गगन में जय घोष भरता ही रहा
और तुम उटते रहे बढ़ते रहे
राह में जय घोष बढ़ता ही रहा
आज उत्तर दो मुझे झुककर उठा दो
मुक्त नभ का जीव डण्डे पर लगा दो
मैं न नवल बिहान ऐसा चाहता हूँ
तुम मुझे जलियान मेरा ही दिला दो,

खड़ा जग इस मरण घाटी में थकित कंपित चरण धर
और नीचे बह रही है अन्ध की खरधार हरहर
प्रश्न उठता क्षितिज से दुर्दान्त इस काले प्रहर में
छिन्न नव-निर्माण की पतवार झंझा में, लहर में
आग से धक् धक् सिरों से पटी रक्त भरी, घिरी
राह पर, फिर आज तेरी करुण ध्वनि उठती फिरी
प्रलय की इस राह पर जर्जर उठा छाती अड़े
नाश के इस प्रश्न में निर्माण के उत्तर खड़े
तुम खड़े ही रहो चाहे
घिर रहें पागल प्रलय हों
उठी छाती की अजर
प्राचीर में मानव अभय हों





अभी तेरी मंजिलें हैं दूर रे जन दूर घर है
अभी तो यह काफिला नभ में घुसी इस राह पर है
इस विजय पर हर्ष क्या लाचार तू मानव मनाये
और क्यों इस हार से ही हार पथ पर बैठ जाये

असित-अरुणिम हार-विजयों के सजीले रंग ले
सामने नभ तक बिछे सुनसान क्षिति के फलक पर
बना काले मेघ उगते प्रात के सपने सुनहले
मिटा दे अस्तित्व अपना मुक्ति की चल झलक पर

है तुम्हारी करुण यह अभिव्यक्ति ओ पथ के पुजारी
तुम बढ़ो यह धूल प्यासी पी जिये पग ध्वनि तुम्हारी

धूल यह बनती रहे मिटती रहे
कहानी पगचिन्ह में कहती रहे
धूल मिटती धूल बनती
नगर गुरु मीनार उठती
फिर लहर का एक झोंका धूल की दीवार ढहती

फिर अरे इन धूल के धूमिल घरौनों से
मोह इतना क्यों अरे पिछले फिसानों से
मत घिरो नर मंजिलें
हैं दूर कितनी
भूल मत जाओ कि
कितनी राह चलनी
एक डग भर छोड़ मन्दिर मसजिदों के ये घरौंदे
अमर! चल उस ओर पिछले बन्धनों के व्यूह रौंदे

आह तुमको याद आते कल्पना के वे सुखद घर
झर रहे हों जहाँ मधुमय मिलन के घन बूँद झर झर
याद फिर आते विजय के स्वर पराजय की लहर में
याद तुमको प्रात आते नाश के काले प्रहर में
पोंछ डालो आँसुओं के चित्र मधुमय पोंछ डालो
और सूनी राह पर हुंकार भर पग आज डालो
अरे जितना दूर है घर
चरण उतने ही विकल हों
गान होंठों पर उठे फिर
राह पर ये पग चपल हों

